संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा

दूरभाष नं०(०५६५) २४०३९४०
२४००८६५,२४०२५७४
मोबाइल नं० ९९२७०८६२९१
७५३४८१२०३७
७५३४८१२०३८
७५३४८१२०३९
फैक्स नं० (०५६५)२४१२२७३
ईमेल- ajsansthan@awgp.org
प्रातः १० से सायं ६ तक

वर्ष	: ७८
अंक	: १२
दिसंबर	: २०१४
मार्गशीर्ष-पौष	: २०७१
प्रकाशन तिथि	: १.११.२०१४
वार्षिक चंदा	
भारत में	: १५०/-
विदेश में	: १३००/-
आजीवन	: ३०००/-
(सुरक्षा निधि)	

प्रेम

प्रेम के ढाई अक्षरों में तीनों लोकों में व्याप्त परमात्मा समाया है। शब्द तो छोटा-सा है; जबकि प्रेम में समाया सत्य विराट से विराटतर है। प्रेम की अनुभूति है ही ऐसी, जहाँ प्रेमी पूरी तरह से मिट जाता है, जहाँ से उसकी कोई खबर नहीं मिलती है। प्रेम महाशून्य है, प्रेम महामृत्यु है। एक ऐसी जगह है प्रेम, जहाँ स्वयं को खोया तो जा सकता है, लेकिन खोजा नहीं जा सकता। इसकी प्रगाढ़ अनुभूति में खोता है स्वयं का अस्तित्व और मिलता है परमात्मा।

तभी तो अनुभवीजनों ने कहा है—'प्रेम ही परमेश्वर है'। प्रेम करने वाला जहाँ शून्य हो जाता है, वहीं परमात्मा प्रकट होता है। अपने अनंत-अनंत रूपों में उसकी वास्तविकता प्रकट होने लगती है। जहाँ हम स्वयं को खो देते हैं, वहीं उसकी वीणा बज उठती है। उसके अनंत स्वर अस्तित्व को घेर लेते हैं। यह ऐसी विलक्षण अनुभूति है, जिसे पाने वाला कहने के लिए नहीं बचता। प्रेम को जानने वाला, जानने में खो जाता है, पिघल जाता है, बह जाता है। बोलने के लिए बचता ही नहीं।

यही यथार्थ है। जितनी गहरी होती है समझ, उतना ही मौन प्रगाढ़ हो जाता है; फिर अगर बोला भी जाता है, तो वह मजबूरी होती है। दूसरा समझ न पाएगा मौन को, इसीलिए बोलना पड़ता है। हालाँकि बोलते समय यह बात कभी नहीं भूल पाती कि जो पाया है, वह कहा न जा सकेगा; क्योंकि कहने वाला भी शेष नहीं रहा, उसे पाने में। प्रेम की शून्यता है ही कुछ ऐसी, इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता।

प्रेम के इस शून्य के साथ गणित के शून्य की भी चर्चा होती है। एक के ऊपर रख दो, दस बन जाते हैं। दस के ऊपर रख दो, सौ बन जाते हैं। सारा गणित शून्य का ही फैलाव है। लेकिन गणित का शून्य मानवनिर्मित है, मानव के न होने पर यह खो जाएगा; जबकि प्रेम का शून्य आदमी के न होने पर भी रहेगा। जब दो पक्षी प्रेम में पड़ते हैं तो उसी शून्य आकाश में उतर जाते हैं। धरती व आकाश जब प्रेम में डूबते हैं तो इसी शून्य में उतरते हैं। प्रेम की इसी शून्यता में परमात्मा की अनुभूति है। इसी अनुभूति में जीवन का परम सत्य परिभाषित होता है।

▶समूह साधना वर्ष◀

PPD Printing Publishing Designing
SHRIRAMPURAM
SHANTIKUNJ, HARIDWAR

विषय सूची

- प्रेम ३
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  महँगी पड़ेगी हिमालय के साथ खिलवाड़ ५
- अनंत आनंद का स्रोत है आध्यात्मिकता ८
- नीति से नीयत और नीयत से बनती है नियति १०
- जागेगी नारी तो ये देश भी जागेगा १२
- **पर्व विशेष (गीता जयंती)**
  आत्मा की अमरता के संदेश का पर्व १४
- मरने के बाद हमारा क्या होता है ? १६
- प्रकृति के रहस्यों का अनावरण १८
- तनावपूर्ण न बनने दें अपना जीवन २०
- बदलें दृष्टिकोण, हों अभावमुक्त २२
- कैसे अपनाएँ अच्छी आदतें २४
- **आदिशक्ति की लीलाकथा—९२**
  प्रजापति ब्रह्मा ने किया
  माँ भगवती का आवाहन २६
- डर से डरें नहीं, उसे दूर भगाएँ २९
- व्यक्तित्व का आभूषण है—विनम्रता ३१
- अध्यात्म-पथ के पथिक ३३
- प्रेरणाप्रद है भारतीय इतिहास ३५
- जीवन का हर क्षण बहुमूल्य है ३७
- घर की लक्ष्मी हैं गृहिणियाँ ३९
- बिना परिश्रम के मूल्यहीन है जीवन ४१
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—६८**
  पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्म ४२
- **अंतर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान—३**
  जीवन के शीर्षासन से
  प्राप्त होती हैं दुर्लभ सिद्धियाँ ४४
- **श्रीराम भक्ति की साधना—८६**
  ऋषि वसिष्ठ ने कही जय-विजय की कथा ४६
- **युगगीता—१७५**
  भगवान के अनंत विस्तार के आगे
  नतमस्तक हैं अर्जुन ४८
- **चेतना की शिखर यात्रा—१४७**
  समय रहेगा साक्षी ५२
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—४**
  मनुष्य शरीर की वास्तविक संपदाएँ
  (समापन किस्त) ५५
- **विश्वविद्यालय परिसर से—११४**
  देव संस्कृति का हुआ अंतरराष्ट्रीय विस्तार ६१
- **अपनों से अपनी बात**
  अखण्ड ज्योति के पाठकों से
  भावभरा अनुरोध ६३
- भारतीय संस्कृति की पहचान (कविता) ६६

जनवरी, २०१५ से अखण्ड ज्योति हिंदी का वार्षिक चंदा भारत में १५०/-आजीवन चंदा ३०००/-एवं विदेश में १३००/-वार्षिक होगा। अँगरेजी पत्रिका का भारत में वार्षिक चंदा १००/-एवं विदेश में वार्षिक चंदा १०५०/-होगा। अगले वर्ष का चंदा इसी हिसाब से भेजने का अनुग्रह करें।

दिसंबर, २०१४ व जनवरी, २०१५ के पर्व-त्योहार

मंगलवार	०२	दिसंबर	गीता जयंती	सोमवार	१२	जनवरी	स्वामी विवेकानंद जयंती
शनिवार	०६	दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती/पूर्णिमा	बुधवार	१४	जनवरी	मकर संक्रांति
गुरुवार	१८	दिसंबर	सफला एकादशी	शुक्रवार	१६	जनवरी	षट्तिला एकादशी
गुरुवार	२५	दिसंबर	क्रिसमस	मंगलवार	२०	जनवरी	मौनी अमावस्या
शनिवार	२७	दिसंबर	सूर्य षष्ठी	शुक्रवार	२३	जनवरी	नेताजी सुभाषचंद्र बोष जयंती
रविवार	२८	दिसंबर	गुरुगोविंद सिंह जयंती	शनिवार	२४	जनवरी	श्री वसंत पंचमी / बोध दिवस
गुरुवार	०१	जनवरी	पुत्रदा एकादशी/नववर्ष आरंभ	रविवार	२५	जनवरी	सूर्य षष्ठी
गुरुवार	०८	जनवरी	संकष्ट चौथ	सोमवार	२६	जनवरी	गणतंत्र दिवस
				शुक्रवार	३०	जनवरी	जया एकादशी/शहीद दिवस

▶समूह साधना वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

महँगी पड़ेगी हिमालय के साथ खिलवाड़

हमारे अस्तित्व का आधार है हिमालय

हिमालय 'हिम' का ही नहीं 'हम' का भी अर्थात हम सबका आलय, यानी घर है। इस घर से जुड़ा हुआ है हम सब का अस्तित्व- हमारा अतीत, वर्तमान व भविष्य। लेकिन जिस तरह इस घर के दरो-दीवार से, इसके पर्यावरण से छेड़-छाड़ हो रही है, उसके भयावह परिणाम सामने हैं। देश अभी सवा साल पहले उत्तराखंड की तबाही से उबर भी नहीं पाया था कि धरती का स्वर्ग मानी जाने वाली कश्मीर घाटी की नदियों की बाढ़ ने उसे नरक में बदल दिया है। वर्षा की अधिकता ऐसी मुसीबत बनी कि देखते-देखते ऋषि कश्यप व सूफी मीर द्वारा बसाई इस स्वर्ग की धरती पर बलखाती नदियों— झेलम, चिनाव व तवी ने अपनी प्रकृति बदलकर रौद्र रूप धारण कर लिया। बाढ़ की ऐसी तबाही मची कि जम्मू-कश्मीर राज्य का जर्रा-जर्रा विनाश की कुरूपता में बदल गया। राज्य सरकार का समूचा तंत्र पंगु हो गया। अलग होने का नारा लगाने वाले अलगाववादियों की बोलती बंद हो गई। स्थानीय सरकार किसी भी उम्मीद पर खरी नहीं उतरी। भारत सरकार ने समय पर सतर्कता न बरती होती, तो जनहानि का परिदृश्य कितना भयावह होता, इसकी कल्पना ही सिहरन पैदा कर देती है।

बहरहाल, इस बरबादी को प्राकृतिक आपदा माना जाए या आधुनिक विकास की देन, यह प्रश्न ज्यों का त्यों बना हुआ है; क्योंकि इस तथाकथित विकास की बुनियाद प्रकृति के दोहन पर टिकी हुई है। हालाँकि विकास के राजनीतिक पुरोधा यह आसानी से कैसे मान लेंगे कि यह आपदा मानवनिर्मित है। सेना द्वारा युद्धस्तर पर चलाए गए राहत व बचाव कार्यों के बाद जब पुनर्वास का सिलसिला शुरू होगा, तब अलगाववादी अपनी आदत के अनुरूप फिर से बाधाएँ खड़ी करने में लग जाएँगे। जानकार कहते हैं कि राज्य में १०९ वर्षों से ऐसी बाढ़ नहीं आई है। घाटी में आई इस बाढ़ ने करीब ३,००० गाँवों को अपनी चपेट में लिया है। इसमें ३९० ऐसे गाँव हैं, जो राज्य में फैली आवागमन व संचार-सुविधाओं से पूरी तरह से कट चुके हैं। बाढ़ के कारण केसर, अखरोट और सेब की फसलें चौपट हो चुकी हैं। पशुओं की हालत इस जलप्रलय में क्या हुई है यह कहना मुश्किल है। पुनर्वास के साथ ही राज्य को दूध और बचे मवेशियों के लिए चारे के संकट का भी सामना करना पड़ेगा।

बात अकेले कश्मीर की नहीं है, उत्तर-भारत, नेपाल और पाकिस्तान के कई हिस्सों में नदियों ने अपना जो रौद्ररूप दिखाया है, उनमें से ज्यादातर हिमालय की पर्वत-शृंखलाओं से निकलती हैं। यही वह पृष्ठभूमि है, जिसमें हमने इस साल हिमालय दिवस मनाया है। यह पृष्ठभूमि बहुत कुछ कहती है। हिमालय पर्वत के हमारे लिए सदियों-सहस्राब्दियों से गहरे आध्यात्मिक, प्राकृतिक अर्थ रहे हैं। लेकिन पिछले कुछ समय से हिमालय का अर्थ, बस, आपदा तक सिमट गया है। केदारनाथ हो या कश्मीर, यहाँ हुई त्रासदी को लोग दशकों तक नहीं भूल पाएँगे। पिछले कुछ सालों से बिगड़ते पर्यावरण की लगातार जो खबरें आई हैं, हिमालय उनके केंद्र में दीखता है।

स्थिति स्पष्ट है—हिमालय का संकट गहरा रहा है। यह संकट हम सबके अस्तित्व व भविष्य का है। इस संकट से पार न पाया गया तो पहाड़ खाली हो सकते हैं, खेत फसल देने से मना कर सकते हैं, नदियों का पानी कम हो सकता है, स्वस्थ पहाड़ी जीवन में बीमारियाँ पैर जमा सकती हैं, अनाज की कमी हो सकती है, भूस्खलन व अचानक आने वाली बाढ़ एक डरावने सपने की तरह लगातार पीछा कर सकती है। यह सब उस समय होने को है, जब देश की सबसे बड़ी चिंता आर्थिक विकास की है। बेरोजगारों की लंबी फौज के लिए रोजगार के अवसर पैदा करने की है। इस प्रक्रिया में पर्यावरण की परेशानियों को भुला दिया गया है। आर्थिक विकास का आसमान छूने की कोशिश में लगे नीति-नियामकों को फिलहाल पैरों तले खिसकती जमीन दिखाई नहीं दे रही है, यद्यपि ऐसा हो तो पूरे देश में रहा है। हाँ, यह जरूर है कि हिमालय में इसे साफ-साफ देखा जा सकता है। हिमालय से दूर महाराष्ट्र के मालीन गाँव को ही देख लें,

वहाँ थोड़े समय पहले वनविहीन पहाड़ का मलबा पूरे गाँव को लील गया था। केदारनाथ हो या कश्मीर, हम प्रायः तात्कालिक लाभ की चीजों के पीछे लगे रहते हैं और दूरगामी हानि की आशंकाओं को नजरअंदाज कर दिया जाता है।

लगातार अनदेखियों का शिकार है हिमालय

देश की परिस्थितियों का केंद्र हिमालय लगातार इस अनदेखी का शिकार रहा है। स्थानीय राजनीति और केंद्र की समझ ने हिमालय की सारी समस्याओं का इलाज यही माना है कि इसके विभिन्न हिस्सों को अलग-अलग राज्यों का दरजा दे दिया जाए। इससे बस, इतना-सा अंतर आया कि जो लोग राज्यों की माँग कर रहे थे, उनके लिए उनकी राजनीतिक योजनाएँ व महत्त्वाकांक्षाएँ महत्त्वपूर्ण थीं। उनके मन में हिमालय के संरक्षण की सोच कहीं नहीं थी। आज जो स्थिति बनी है, उसमें एक सत्य सुस्पष्ट है कि हिमालय का पर्यावरण इतना कमजोर पड़ चुका है कि अब यहाँ मानसून का स्वागत नहीं होता। विकास के नाम पर अंधाधुंध सड़कों ने गाँवों को जोड़ने से ज्यादा तोड़ने का काम किया है। कुछ गाँवों के लोग तो सड़कों से डरने भी लग गए हैं; क्योंकि यहाँ सड़क-निर्माण का अर्थ अब अक्सर मुसीबतों को दावत देना बन गया है।

हालाँकि सड़क से ज्यादा बड़ी दिक्कतें यहाँ लगने वाली जल विद्युत परियोजनाएँ पैदा करती हैं। हिमालय से निकलने वाली हर जलधारा को विद्युत-ऊर्जा का स्रोत मानने की प्रवृत्ति ने इस महान पर्वत को स्वर्ग से नरक बना दिया है। ये परियोजनाएँ ऊर्जा की आपूर्ति के नाम पर हिमालय को छिन्न-भिन्न कर रही हैं। हिमालय के सभी राज्य, चाहे वे उत्तरपूर्वी हों या पश्चिमी, किसी ने भी पर्यावरण को सुरक्षित और बेहतर रखने की चिंता नहीं की। सभी राज्यों की एकमात्र चिंता यही बनी रही कि किस तरह राज्य की जी० डी० पी० बढ़ाई जाए, भले ही जीवन में खुशियों के अवसर बढ़ें या न बढ़ें।

इस सोच ने हिमालय के संकट को गहरा किया है। 'इंटरनेशनल पैनल फॉर क्लाइमेट चेन्ज' ने हाल ही में यह चेतावनी दी है कि मौसम में बदलाव के कारण बादल फटने, अचानक आ जाने वाली बाढ़, तेज बरसात, सूखे जैसी घटनाओं में इजाफा होगा। हिमालयी राज्यों में यही स्थिति देखी जा सकती है। सदा शांत रहने वाली नीति घाटी में बादल गरज रहे हैं और बादल फट रहे हैं। बुग्यालों में तेज बरसात हो रही है। नदियों में गाद की मात्रा बढ़ जाने के कारण जल विद्युत परियोजनाओं की उत्पादन-क्षमता प्रभावित हो रही है। प्लानिंग कमीशन की नवंबर, २०१३ में आई रिपोर्ट ने हिमालय के एक और संकट की ओर इशारा किया था। बी० के० चतुर्वेदी की अध्यक्षता में बनी कमेटी की इस रिपोर्ट में कहा गया था कि यह पर्वतीय क्षेत्र दुनिया के सबसे संवेदनशील क्षेत्रों में से एक है। इस वजह से हिमालयी व उत्तर पूर्वी राज्यों में विकास का वह मॉडल होना चाहिए, जो पर्यावरण संतुलन न बिगाड़े।

हिमालयी राज्यों में यदि हम केवल उत्तराखंड पर विचार करें तो केंद्रीय योजना आयोग ने जब 'डेवलपमेंट डिसेबिलिटी इंडेक्स' बनाया था तो उसमें उत्तराखंड को ऊपरी पाँच राज्यों में रखा था। इस राज्य की एक हकीकत यह भी है कि इसे देश का पावर टावर कहा जाता है। सौ दिन के अंतराल में करीब १६०० एम एम बरसात यहाँ होती है। प्रदेश का करीब १३% भू-भाग बरफ में ढका हुआ है। इसमें करीब ९०० ग्लेशियर हैं। एक बड़ी जनसंख्या के लिए अलकनंदा, भागीरथी (गंगा), मंदाकिनी एवं यमुना जल के प्रमुख स्रोत हैं। मौसम बदलाव के कारण ग्लेशियरों का सिकुड़ना अब स्वीकार किया जा रहा है। ३० किमी लंबे गंगोत्तरी ग्लेशियर के बारे में माना जाता है कि यह १९६२ से लेकर अब तक करीब बीस मीटर प्रति वर्ष के हिसाब से सिकुड़ा है।

जून, २०१३ की आपदा यह जानने के लिए पर्याप्त है कि संवेदनशील हिमालय किस तरह से और कितना नुकसान पहुँचा सकता है। ग्लेशियर में बनी झील के अचानक फटने से आने वाली बाढ़ किस हद तक तबाही मचा सकती है। नौ सौ से अधिक ग्लेशियर वाले इस हिमालय राज्य में यह संकट कितना बड़ा हो सकता है, इसका फिलहाल अंदाजा लगाना मुश्किल है। ग्लेशियर की समस्या के अलावा इस राज्य में २० टन प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष से अधिक मिट्टी कटाव से बेकार जा रही है। पिथौरागढ़, चमोली, उत्तरकाशी जिलों में इस भूमि कटाव के कारण ४०% से अधिक भूमि 'कृषि योग्य नहीं' वर्ग में है। बागेश्वर और रुद्रप्रयाग में करीब २०% और अन्य जिलों में करीब १०% भूमि इस वर्ग में है। भूमि के इस कटाव के अलावा मौसम के बदलाव ने खेती पर संकट खड़ा कर दिया है। अधिकतम बरसात का समय करीब १५ दिन पीछे खिसक चुका है। ऐसे में फसल उत्पादन

प्रभावित हो रहा है। इसी के साथ यहाँ बीमारियाँ पैर पसार रही हैं। आईएमडी के एक अध्ययन के मुताबिक न्यूनतम व अधिकतम तापमान का अंतर कम हो रहा है। औसत तापमान बदल जाने से नए परजीवी पैदा हो रहे हैं, जो बीमारियाँ बढ़ाने में लगे हुए हैं।

यह सत्य केवल उत्तराखंड का नहीं, बल्कि संपूर्ण हिमालय क्षेत्र का है। यह स्थिति बनी है—अनियोजित विकास से। इसी का परिणाम है—पहले केदारनाथ के क्षेत्र में जलप्रलय आई है और अब अमरनाथ के क्षेत्र में पुनः जलप्रलय के भयावह दृश्य सामने आए। महेश्वर महारुद्र के इस कोप से बचने के लिए हिमालय को अपना घर समझकर उसके बारे में गंभीरता से विचार करना होगा। यह ठीक है कि ग्लेशियरों के सिकुड़ने पर अध्ययन हो रहा है, लेकिन इससे ट्री लाइन, फसलचक्र, जीव-जंतु और सिंचाई-व्यवस्था पर क्या कुप्रभाव पड़ रहे हैं, इस पर अभी तक किसी का ध्यान नहीं गया है; जबकि यह ज्वलंत समस्या उभरकर सामने आ रही है। अच्छा तो यह हो कि हिमालय से जुड़े सभी देश—भारत, नेपाल, पाकिस्तान, भूटान व चीन, एक संगठन बनाकर हिमालय के संरक्षण व संवर्द्धन की योजना बनाएँ व उसे क्रियान्वित करने में तत्परता दिखाएँ।

पहले केदार घाटी और अब कश्मीर घाटी में जो अतिवृष्टि हुई, उसके गहन वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है। यह देखा जाना बेहद जरूरी है कि इस प्रकार की अतिवृष्टि पहले जब भी हुई है तो उस समय वातावरण पर इसका क्या असर हो रहा था। इस वैज्ञानिक सत्य को कभी नहीं भुलाया जाना चाहिए कि हिमालय क्षेत्र भारत के मौसम का नियंत्रक भी है। उच्च हिमालयी क्षेत्रों में जब मानवीय हस्तक्षेप बढ़ता है तो मौसम में भी भारी बदलाव देखने को मिलता है। हिमालय के बारे में वर्तमान तक का अध्ययन पूर्ण नहीं माना जा सकता। हिमालय क्षेत्र में इन दस सालों में क्या बदलाव आया है, इसका अध्ययन होना भी बहुत आवश्यक है। कतिपय भारतीय वैज्ञानिक हिमालय में ९७५ ग्लेशियर होने की बात कहते हैं; जबकि इसरो हिमालय में २३ हजार ग्लेशियर होने को सत्य बताता है। यह भिन्नता हिमालय के बारे में पूर्ण जानकारी न होने की वजह से है।

जहाँ तक विकास से जुड़े सवाल हैं तो हिमालय विकास का विरोधी नहीं है। हाँ, हिमालय का एकतरफा विकास, बड़े विनाश का कारण अवश्य बनेगा। हिमालय स्वयं संतुलित है, इसलिए संतुलित विकास का पक्षधर है। इसके सरल, मूक, व्यवहार को हलके में न लिया जाए। रास्ता एक ही है—हर वर्ष यहाँ के पर्यावरणीय हालातों पर अध्ययन-अनुसंधान किए जाएँ, अन्यथा कल केदार घाटी तो आज कश्मीर घाटी, महारुद्र के विभिन्न रूपों के कोप को झेलती रहेगी। आने वाले कल में किस राज्य में प्रलय का विकराल रूप किस रूप में होगा, कौन कह सकता है। आखिर कब तक हम इन आपदाओं के मूल कारणों की अनदेखी करते रहेंगे। जितनी ऊर्जा व धन हम आपदा के बाद खरच करते हैं, उससे बहुत कम में हम सुनियोजित प्रयास करके इससे मुक्त हो सकते हैं।

हमें यह ध्यान रखना होगा कि हिमालय की यह अनदेखी अब सबके लिए परेशानी बनने वाली है। जब भी हिमालय में कोई आपदा आएगी, उसका असर न सिर्फ देश पर, बल्कि पूरी दुनिया पर पड़ेगा; क्योंकि मैदानी इलाकों में बहने वाली तमाम नदियाँ यहीं से अपनी यात्रा शुरू करती हैं। नदियों द्वारा लाई हुई उपजाऊ मिट्टी इलाकों में हरियाली लाती है। वनों के सारे सरोकार हिमालय से ही हैं। मिट्टी, हवा जैसे जीवन के सारे आधार हिमालय की ही देन हैं। वन से आच्छादित हिमालय ही देश की प्राण-वायु व पानी का सबसे बड़ा कारक है। देश की ६५% जनता इसी के प्रभाव से फलती-फूलती है। ऐसे में हिमालय की पारिस्थितिकी बिगड़ती है, तो इसका असर देश के जन-जीवन पर पड़ेगा। हिमालय का संरक्षण-संवर्द्धन इसलिए भी जरूरी है कि यह देश का मुकुट ही नहीं प्राण भी है।

महाकवि कालिदास ने इसी हिमालय के लिए अपने काव्य में कहा था—'हिमालय अनेक रत्नों का जन्मदाता है (**अनन्तरत्न प्रभवस्य यस्य**), उसकी पर्वत-शृंखलाओं में जीवन औषधियाँ उत्पन्न होती हैं (**भवन्ति यत्रौषधयो रजन्याय तैल पुरत सुरत प्रदीपः**), वह पृथ्वी में रहकर भी स्वर्ग है (**भूमिर्दिवभि वारूढं**)।' आज उसी हिमालय ने संकटों के संकेत देने शुरू कर दिए हैं। इन पर विचार करने की आवश्यकता है। यदि हम भारतवासी इसकी सुरक्षा कर सके तो यह निस्संदेह हम सभी देशवासियों के लिए सुरक्षा कवच बनेगा। हिमालय को बचाने का मतलब है—सीधे-सीधे अपने देश व देशवासियों की रक्षा करना।

अनंत आनंद का स्रोत है आध्यात्मिकता

लोगों ने अभी तक अध्यात्म व आध्यात्मिकता का सही अर्थ नहीं समझा है। इसी कारण इसे अपनाने में कतराते हैं। लोग यह समझते हैं कि आध्यात्मिकता का अर्थ है—अभावग्रस्त जीवन बिताना व स्वयं को कष्ट देना, और इसमें भी मुख्य रूप से यह मानते हैं कि आध्यात्मिकता जीवन-विरोधी व जीवन से पलायन है। आध्यात्मिक लोगों को जीवन का आनंद लेना वर्जित है और हर तरह से उन्हें जीवन में कष्ट ही सहना पड़ता है। इसीलिए आध्यात्मिकता की यह परिभाषा गढ़ने वाले लोग आध्यात्मिक जीवन से दूर जाना चाहते हैं; क्योंकि उन्हें इसमें ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता, जिससे उनका हित साधन हो सके; जबकि सचाई इसके विपरीत है। आध्यात्मिकता का व्यक्ति के बाहरी जीवन से कुछ भी लेना-देना नहीं है कि वह कैसे रहता है? क्या पहनता है और क्या खाता है? अध्यात्म का विषय ही मनुष्य के आंतरिक जीवन से जुड़ा हुआ है। वे सभी गतिविधियाँ, जो मनुष्य को परिष्कृत, निर्मल बनाती हैं, आनंद से भरपूर करती हैं, पूर्णता का एहसास देती हैं, स्वयं से परिचय कराती हैं—वे सब अध्यात्म के अंतर्गत आती हैं। इन सभी गतिविधियों को जीने वाला व्यक्ति आध्यात्मिक कहलाता है।

एक बार किसी सद्गुरु से किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया—"एक आध्यात्मिक व एक संसारी व्यक्ति में क्या अंतर है?" इस बारे में सद्गुरु का सहज उत्तर था—"एक संसारी मनुष्य केवल सांसारिक कार्यों को कर पाने में सक्षम होता है; जबकि आंतरिक संतुष्टि के लिए उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसके विपरीत एक आध्यात्मिक व्यक्ति अपनी आंतरिक संतुष्टि स्वयं अर्जित करता है और मात्र सांसारिक कार्यों के लिए संसार पर निर्भर रह सकता है।"

आध्यात्मिकता का संबंध मनुष्य के आंतरिक जीवन से है और इसकी शुरुआत होती है—उसकी अंतर्यात्रा से। मनुष्य पूरी दुनिया में भ्रमण करता है, लेकिन अंतर्यात्रा ही नहीं करता तथा अपने अंतर में प्रवेश ही नहीं कर पाता। विरले ही होते हैं, जो इस अंतर्यात्रा में प्रवेश के अधिकारी होते हैं, इसके लिए सत्पात्र होते हैं और सामान्यजन आध्यात्मिक जीवन की पात्रता की कसौटी को जाने बिना ही इसे कठिन मार्ग मान लेते हैं।

आध्यात्मिक जीवन की बहुत-सी कसौटियाँ हैं, लेकिन कुछ ऐसी प्रमुख बातें हैं, जिन्हें जानकर हम यह आकलन कर सकते हैं कि हमारे अंदर आध्यात्मिकता का कितना अंश है? जैसे यदि किए जाने वाले कार्यों का उद्देश्य स्वार्थ न होकर परमार्थ है, तो यह आध्यात्मिकता की राह है। यदि व्यक्ति अपने अहंकार, क्रोध, नाराजगी, लालच, ईर्ष्या और पूर्वाग्रहों को गला चुका है तो वह आध्यात्मिक जीवन की डगर पर बढ़ रहा है। व्यक्ति की बाहरी परिस्थितियाँ चाहे जैसी भी हों, पर वह यदि आंतरिक रूप से प्रसन्न रहता है तो इसका अर्थ है कि वह आध्यात्मिक जीवन को महसूस करने लगा है। यदि इस विशाल सृष्टि के सामने स्वयं को नगण्य और क्षुद्र मानने का एहसास व्यक्ति कर पाता है तो वह आध्यात्मिक बन रहा है। उसके पास जो कुछ भी है, उसके लिए यदि वह सृष्टि या परमसत्ता के प्रति कृतज्ञता महसूस कर पाता है तो वह आध्यात्मिकता की ओर बढ़ रहा है। यदि व्यक्ति में स्वजनों के प्रति जितना प्रेम उमड़ता है, उतना ही सभी लोगों के लिए उमड़ता है, तो वह आध्यात्मिक है।

आध्यात्मिक होने का अर्थ है कि व्यक्ति अपने अनुभव के धरातल पर यह जानता है कि वह स्वयं अपने आनंद का स्रोत है। बाहरी वेशभूषा व रहन-सहन से आध्यात्मिकता का कोई लेना-देना नहीं है; क्योंकि इसका वास्तविक संबंध व्यक्तित्व की अतल गहराई से है। आध्यात्मिकता सोए हुए संवेदनहीन व्यक्तियों के लिए नहीं है, यह निधि तो उनके लिए है, जो जीवन के हर आयाम को पूर्ण जीवंतता के साथ जीते हैं और हर पल सजग व सक्रिय रहते हैं।

आध्यात्मिक प्रक्रिया व्यक्ति की एक ऐसी अंतर्यात्रा है, जिसमें निरंतर परिवर्तन घटित होता है और इन परिवर्तनों के कारण उपजे उतार-चढ़ाव को उसे सहने के लिए भी

तैयार होना चाहिए, अन्यथा इसके परिणाम उसके लिए अच्छे नहीं होते। इसी कारण जो व्यक्ति आध्यात्मिक डगर पर आगे बढ़ते हैं, उनमें अदम्य साहस, सशक्त मन, स्वस्थ शरीर व संतुलित भावनाओं का होना जरूरी है। आध्यात्मिक व्यक्ति को अपना संबंध परमात्मा से बनाना चाहिए, क्योंकि वे ही एकमात्र पूर्ण हैं, जो उसके जीवन को पूर्णता की ओर ले जा सकते हैं। परमात्मा यद्यपि प्रत्यक्ष दृश्यमान नहीं हैं, लेकिन व्यक्ति अपनी पवित्र भावनाओं के माध्यम से उन अदृश्य परमात्मा तक पहुँच सकता है और उनके सतत सानिध्य को प्राप्त कर सकता है।

आध्यात्मिकता मूलत: व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया है। इसके माध्यम से हम अपने व्यक्तित्व में जन्म-जन्मांतरों से पड़ी हुई गाँठों को खोल पाते हैं, उनमें जमा ऊर्जा को मुक्त कर पाते हैं और अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त कर पाते हैं। आध्यात्मिकता का अर्थ है कि अपने विकास की प्रक्रिया को खूब तेज कर देना। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने का अर्थ है कि व्यक्ति अपने बंधनों से मुक्त हो रहा है, पूरी तरह से स्वतंत्र हो रहा है, अब वह किसी के अधीन नहीं रह गया है, अब वह अपनी स्वेच्छा से कुछ भी कर सकने में समर्थ है और उसे यह अधिकार स्वयं प्रकृति ने दिया है। आध्यात्मिकता न तो मनोवैज्ञानिक क्रिया है और न ही सामाजिक। यह शत-प्रतिशत हमारे अस्तित्व से संबंधित है। अगर हम किसी कार्य में पूरी तन्मयता से डूब जाते हैं तो वहीं पर आध्यात्मिक प्रक्रिया की शुरुआत हो जाती है; क्योंकि किसी चीज को सतही तौर पर जानना सांसारिकता है और उसे गहराई तक जानना आध्यात्मिकता है।

ज्ञानीजन कहते हैं कि 'शून्य में विराट समाया है और इस विराट में भी शून्य है'। जो इस शरीर में ही रहकर परमात्मा के इस विराट रूप को समझ पाता है, उसे अनुभव कर पाता है, वही आध्यात्मिक है और इसके लिए उसे इस भौतिक दृश्यमान जीवन से परे घटित होने वाले जीवन को भी अनुभव करना होगा। आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही मनुष्यों को सही राह दिखा पाने में सक्षम है और यही हम सबके जीवन का ध्येय होना चाहिए। ❀

संत एकनाथ के विषय में प्रसिद्ध था कि उनकी सहनशीलता अपूर्व है। एक बार उनकी परीक्षा लेने के इरादे से एक व्यक्ति उस पेड़ पर चढ़ गया, जिसके नीचे से संत एकनाथ प्रतिदिन नदी स्नान को निकलते थे। उस दिन जैसे ही वे नदी स्नान से लौटकर घर वापस जाने लगे, उस दुष्ट व्यक्ति ने संत पर कुल्ला कर दिया। एकनाथ कुछ बोले नहीं और वापस जाकर नदी स्नान कर आए। दोबारा लौटने लगे तो उस व्यक्ति ने उन पर फिर से कुल्ला कर दिया। इस बार भी संत एकनाथ बिना कुछ बोले वापस नदी को लौटे और स्नान करके वापस आ गए। उस व्यक्ति ने इस बार भी उन पर कुल्ला कर दिया और यह प्रक्रिया १०८ बार चली।

इतनी बार कुल्ला करने पर वह व्यक्ति जरूर थक गया, पर संत एकनाथ बिना विचलित हुए नदी स्नान करके वापस लौटते रहे। आखिरकार वह व्यक्ति शर्मिंदा होकर उनके चरणों में गिर पड़ा और उनसे बोला—"भगवन्! मुझे क्षमा करें। मैं घोर पातकी हूँ। मैंने आपको अन्यथा कष्ट दिया।" संत एकनाथ पूर्ण धैर्य के साथ बोले—"नहीं पुत्र! मैं तो तुम्हें धन्यवाद दूँगा। तुम्हारे कारण आज मुझे नदी में १०८ बार स्नान करने का अवसर मिला। ऐसा सौभाग्य कहाँ रोज-रोज मिलता है।" संत के कथन से वह दुष्ट व्यक्ति पानी-पानी हो गया।

नीति से नीयत और नीयत से बनती है नियति

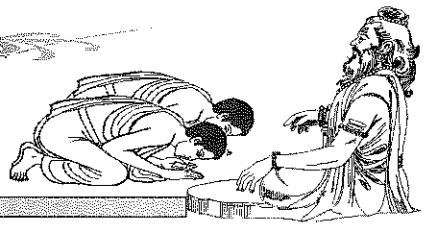

दो सवार अपने-अपने घोड़ों को थामे हुए बेतवा नदी के दूसरे किनारे पहुँचे और वहाँ से दक्षिण की ओर थोड़ी दूर जाकर किनारे पर चढ़ गए। वहाँ से बुंदेलखंड के भरतपुरा की गढ़ी एक-डेढ़ मील दूरी पर थी। बीच में एक जंगल का टुकड़ा पड़ता था। मार्ग में एक छोटी-सी फुलवारी थी। पश्चिम की ओर गेहूँ, चने के हरे-भरे खेत थे। सूर्य के अस्त होने में थोड़ा विलंब था। किरणें हरे-भरे खेतों पर लहरा रही थीं। दोनों सवारों की उम्र यही कोई बीस-बाईस वर्ष रही होगी। एक सवार बाहर से आया था और पहला वहीं का था। दोनों सैर करने निकले थे। बाहर के सवार का नाम नीलाभ था। दूसरा सवार कृष्णदत्त वहीं का निवासी था। कृष्णदत्त ने नीलाभ को कहा—''मित्र! यह जो नदी बेतवा है, यहाँ पर नील तरंगमय होकर दो भागों में विभक्त हो गई है। दोनों भागों के बीच लगभग एक मील लंबा और आधा मील चौड़ा एक टापू बन गया है, जिसे अब 'बरौल का सूँड' कहते हैं। इसके दक्षिणी सिरे पर पूर्व में एक छोटी-सी गढ़ी और चहारदीवारी थी, जो खंडहर में बदल गई है। आजकल उसमें जंगली जानवर वास करते हैं।''

नीलाभ विमुग्ध होकर उस दृश्य को देख रहा था और ध्यान से बुंदेलखंड के ऐतिहासिक स्वरूप को सुन रहा था। कृष्णदत्त ने कहा—''देवल, देवरा और देदर में बड़े-बड़े अनगिनत मंदिर थे। दुर्गा और शिव की पूजा-उपासना विशेष रूप से होती थी। शक्ति-भैरव मंदिर के कारण यह नगर दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। दो सौ वर्ष पूर्व यहाँ का मंदिर ध्वस्त हो गया था। मान्यता है कि ओरछा के किसी संपन्न अड़जरिया ब्राह्मण को शिव की मूर्ति ने स्वप्न में दर्शन देकर अपना पता बताया था और उसी ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार करा दिया था। यह मंदिर शक्ति-भैरव और महादेव का था। मंदिर के अहाते के एक कोने में भैरवीचक्र की एक शिला अब भी पड़ी हुई है। उस नगर के वर्तमान भग्नावशेष को लोग आजकल 'सकल भैरव' कहते हैं।''

नीलाभ ने कहा—''कृष्णा! तुम तो इतिहासवेत्ता जान पड़ते हो। तुम्हारा ज्ञान तो प्रभावित करने वाला है।'' कृष्णदत्त ने कहा—''मित्र! मैंने तो जो कुछ सुना था, वह बता दिया। मैं तुमको यहाँ पर एक ऐसी महान विभूति से मिलवाऊँगा, जिन्होंने इस इतिहास को अपनी आँखों से देखा है। कहते हैं, उनकी उम्र तीन-साढ़े तीन सौ वर्ष के आस-पास है, परंतु यही कोई साठ-सत्तर के लगते हैं। वे एक जीवंत रहस्य हैं और मिलते बहुत कम लोगों से हैं, परंतु उनकी कृपा मेरे ऊपर बरसती रहती है। उन्होंने तुमको दर्शन देने के लिए स्वीकृति दे दी है।''

दोनों अपने घोड़ों से उतरकर पलीथर के पास एक झोंपड़ी की ओर बढ़ने लगे। सूर्यास्त होने में अभी देर थी। पलीथर की पहाड़ी की जड़ में बहने वाले नाले के दोनों किनारों के पेड़ की झुरमुटों की नीलिमा पर रविरश्मियाँ नाच-सी रही थीं। बेतवा के पश्चिमी किनारे पर ऐसा प्रतीत होता था, मानो वनदेवी के पदचारण के लिए पलीथर ने लंबा सुनहला पाँवड़ा बिछा दिया हो। झोंपड़ी से एक महात्मा निकले। उनका ऊँचा-लंबा कद, चौड़ा ललाट, झील-सी गहरी आँखें, जिनमें अमृतमय स्नेह टपक रहा था—ये सब अत्यंत दिव्य प्रतीत हो रहा था। दोनों ने उनके चरणस्पर्श किए। महात्मा ने दोनों के सिर को स्पर्शकर आशीर्वाद प्रदान करते हुए बैठने के स्थान की ओर संकेत किया।

झोंपड़ी के बाहर एक पीपल का देववृक्ष था। पेड़ के चारों ओर मिट्टी का एक चबूतरा था। जिसके नीचे दो-तीन चटाइयाँ बिछी हुई थीं। एक पर महात्मा बैठे और उनके पास की चटाई पर दोनों ने स्थान ग्रहण किया। महात्मा ने कहा—''क्या जानना चाहते हो वत्स! मन में कोई प्रश्न हो तो पूछो।'' महात्मा की वाणी मधुर, स्नेहिल एवं कोमल थी। उनकी आँखें पता नहीं क्या देख रही थीं। वे अनायास बोलने लगे—''किसी भी व्यक्ति एवं स्थान की एक नियति होती है और वह अबाध्य होती है। नियति के अनुरूप चीजें घटती हैं।''

कृष्णदत्त ने कहा—''बाबा! नियति क्या होती है और कैसे बनती है?'' महात्मा ने बड़े प्यार से उनको समझाते हुए कहा—''वत्स! नीति से नियति का निर्माण होता है। नीति का मतलब है व्यक्ति का उद्देश्य क्या है? वह क्या सोचता है और क्या करता है? किसे वह महत्त्व देता है? तुमको एक उदाहरण देता हूँ—कौरव और पांडव महाराज शांतनु के वंशज थे। धृतराष्ट्र के पुत्र 'कौरव' सदा ही षड्यंत्रकारी, फरेबी, झूठे एवं अहंकारी थे। उनके जीवन का उद्देश्य अपने को स्थापित करना और दूसरों को परेशान करना था। वे घोर अधर्मी थे। पापाचरण ही उनकी नीति थी।''

महात्मा आगे बोले—''कौरवों से ठीक उलट पांडुपुत्र 'पाँच पांडव' सदा ही सदाचारी, सत्य, न्यायप्रिय, त्यागी एवं परोपकारी थे। औरों की रक्षा के लिए वे अपने प्राणों की बाजी लगा देते थे। धर्म पर उनकी अगाध आस्था थी। उनकी नीति धर्म पर आधारित थी। इसी नीति एवं आचरण के कारण उनकी नियति का निर्माण हुआ। महाभारत के युद्ध में पांडवों के साथ भगवान कृष्ण स्वयं थे और कौरवों के साथ प्रचंड पराक्रमी भीष्म, द्रोण आदि महारथी सुसज्जित थे, परंतु इतने सारे महारथी भी दुर्योधन को विनाश की नियति से उबार नहीं सके; जबकि पांडवों की नियति धर्म के साथ खड़े होकर विजय प्राप्ति की थी। नियति के अनुरूप कौरव मिट गए और पांडवों को विजयपताका फहराने का सुअवसर प्राप्त हुआ।''

नीलाभ ने कहा—''बाबा! क्या हम अपनी नियति का निर्माण कर सकते हैं।'' महात्मा ने कहा—''वत्स! नियति कर्मों का परिणाम होती है। नीयत के अनुसार नियति होती है। जैसा हम सोचते हैं एवं करते हैं, वैसी ही हमारी नियति होती है। सतत सत्कर्म, सदाचरण एवं सद्भाव के द्वारा हमारी नियति श्रेष्ठता से परिपूर्ण हो जाती है। इसकी विपरीत नियति अत्यंत कष्टसाध्य बन जाती है। जानते हो वत्स! अपने देश के लोगों द्वारा किए गए घोर दुष्कर्म के कारण दीर्घकाल तक यहाँ विदेशी शासन की पराधीनता को झेलना पड़ा। यदि अब से सभी सत्कर्म में संलग्न हो जाएँ तो अपना राष्ट्र विश्वगुरु की नियति को पुनः प्राप्त कर सकता है। भारत की नियति में है कि पुनः खंडहरों में से भारत का पुनर्जन्म होगा। इसी क्रम में हम भी अपने विचार, भाव एवं नीयत के द्वारा अपनी नियति को श्रेष्ठ बना सकते हैं। नीयत से नियति बनती है।'' बाबा शांत हो गए। अपनी नियति का मूलमंत्र लेकर दोनों अपने घोड़ों पर सवार होकर निकल पड़े।

शिष्य ने गुरु से पूछा—''गुरुदेव! संसार में सबसे बड़ी विडंबना क्या है?'' गुरु बोले—''वत्स! संसार में सबसे बड़ी विडंबना शरीर के नश्वर होते हुए भी उसकी आवश्यकताओं को आत्मा की अजर-अमरता से ऊपर का स्थान देना है। आत्मा परमात्मा का अंश है। जिन भोगों में शरीर को आनंद मिलता है, उनसे ही आत्मा को भी आनंद मिले, यह संभव नहीं। मनुष्य यह जानते हुए भी आत्मा को दीन-हीन अवस्था में रखता है और मुरदों जैसा जीवन जीने को मजबूर होता है, इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है?'' शिष्य ने आगे पूछा—''गुरुदेव! इस विडंबना से मुक्ति का उपाय क्या है?'' गुरुदेव ने उत्तर दिया—''वत्स! विवेक और वैराग्य ही वे साधन हैं, जिनसे मनुष्य परमात्मा के बनाए मार्ग पर चलने में सफल होता है। वैराग्य मनुष्य को भोगों से मुक्त करता है तो विवेक मनुष्य को बोध प्रदान करता है।'' शिष्य की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

जागेगी नारी तो ये देश भी जागेगा

स्त्री परिवार की मुख्य धुरी है। इसके बिना किसी परिवार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। परिवार की स्थिति, परिस्थिति क्या है, कैसी है, इसकी मुख्य जिम्मेदारी उस परिवार की स्त्रियों पर होती है, किंतु हमारे समाज में आज भी स्त्रियों को निर्णय लेने का स्वतंत्र अधिकार और वह सम्मान व सत्कार नहीं दिया जाता, जिसकी वे हकदार हैं। यही कारण है कि दूसरों पर निर्भरता के कारण, बार-बार अपमान व तिरस्कार मिलने से उनकी स्थिति परिवार में बहुत अच्छी नहीं होती। महिलाएँ अपने परिवार को समृद्ध करने के लिए बहुत परिश्रम करती हैं, प्रार्थनाएँ-व्रत-उपवास करती हैं, लेकिन उन्हें यथोचित सहयोग व सत्कार न मिलने से वे अपने आत्मसम्मान के भाव को प्राप्त नहीं कर पातीं।

एक परिवार में स्त्री कई भूमिकाओं में होती है, जैसे—बेटी, बहन, पत्नी व माँ के रूप में। स्त्री के ये चारों ही रूप पूजनीय व सम्माननीय हैं। इन चारों ही भूमिकाओं में वह अपना कर्त्तव्य पालन करती है, अपना स्नेह-प्यार व ममता लुटाती है। बेटी के रूप में अपने माता-पिता का गौरव बढ़ाती है, बहन के रूप में अपने भाई का सहयोग करती है, पत्नी के रूप में अपने पति के हर सुख-दुःख में बराबर की सहभागिनी होती है, अपने धर्म का पालन करती है और माँ के रूप में अनगिनत कष्ट व पीड़ा सहकर भी एक नए अस्तित्व को आकार देती है, एक नए जीवन को सँवारती है।

स्त्री के जीवन की हर भूमिका महत्त्वपूर्ण है और उसे अपनी हर भूमिका का पूर्ण निर्वाह करना पड़ता है, तभी तो उसके इस कर्त्तव्य-निर्वाह के कारण परिवार सुविकसित व सुवासित हो उठता है। जिस घर में स्त्री के किसी भी रूप का अभाव होता है, उस जगह उसकी कमी को अनुभव किया जा सकता है और उसके अभाव में होने वाली परिस्थितियों को देखा जा सकता है। यह हमारे समाज की विडंबना ही है कि हम अभी तक स्त्री के इन रूपों के महत्त्व को समझ नहीं पाए हैं। एक समय हमारे समाज में ऐसा भी आया था, जब स्त्री को बंधनों में रखा जाने लगा, उसे घर की चहारदीवारी में कैद किया गया, शिक्षा से वंचित किया गया, रीति-रिवाज व परंपराओं में बाँधा गया और उन रूढ़िवादी कुप्रथाओं को मानने पर विवश किया गया, जिनका कोई औचित्य नहीं था। इन प्रथाओं के कारण न जाने कितनी स्त्रियाँ सतीप्रथा में अपने पति की देह के साथ चिता में जीवित जला दी गईं, न जाने कितनी स्त्रियाँ बाल-विवाह हो जाने पर अविकसित व अपूर्ण मानसिक व शारीरिक स्थिति में कई बच्चों की माँ बन गईं और न जाने कितनी स्त्रियाँ पुनर्विवाह की मान्यता न होने के कारण पति की मृत्यु हो जाने पर लंबा वैधव्य का जीवन व्यतीत करती रहीं। इस तरह न जाने पहले हमारे समाज में कितनी तरह की कुप्रथाएँ विद्यमान थीं, जिनका दंश तत्कालीन समाज की स्त्रियों को झेलना पड़ा।

आज ये प्रथाएँ समाप्तप्राय दीखती हैं, लेकिन कुछ कुप्रथाएँ आज भी अपना सिर उठाए खड़ी हैं और लोग इन्हें मानने में अपनी शानोशौकत, इज्जत समझते हैं। जैसे दहेज की प्रथा के कारण हमारे देश में लड़कों व लड़कियों के विवाह संस्कार पर बेहिसाब खरच किया जाता है, और जितना खरच किया जाता है उतना ही विवाह को अच्छा माना जाता है। इसके लिए भले ही दूसरों से कर्ज लेना पड़े या अपना घर व कीमती सामान गिरवी ही क्यों न रखना पड़े। इस कुप्रथा के कारण ही परिवार में लड़की को बोझ समझा जाता है। उसके वैवाहिक जीवन में अनेक बाधाएँ खड़ी होती हैं, जिसका सीधा असर पूरे परिवार व समाज पर पड़ता है।

ऐसी हमारे समाज में न जाने कितने तरह की कुप्रथाएँ हैं, जो स्त्रियों पर आज भी अत्याचार का कारण बनती हैं। इन प्रथाओं के कारण स्त्रियाँ केवल घुटकर रह जाती हैं, न खुलकर इनका विरोध कर पाती हैं और न ही इन्हें अस्वीकार कर पाती हैं; क्योंकि उन्हें वह अधिकार ही नहीं है कि वे ऐसा कर सकें। यदि कोई स्त्री प्रतिरोध करने का साहस करती भी है तो चुप कराने के लिए बड़े लोगों के तर्क प्रस्तुत रहते हैं।

फिर भी हमारा सौभाग्य है कि पुराना समय अब धीरे-धीरे बदलने लगा है। नए जमाने में अज्ञानतारूपी कुप्रथाओं के ये बादल धीरे-धीरे छँटने लगे हैं। अब महिलाओं को भी शिक्षा का संपूर्ण अधिकार मिल गया है। अब घर की लड़कियाँ भी लड़कों के साथ समान रूप से स्कूलों में पढ़ने जाती हैं और शिक्षा के अपने इस अधिकार का उपयोग करती हैं। यहीं से उनकी स्वतंत्रता की शुरुआत होती है, जिसके माध्यम से उनकी प्रतिभा सुविकसित होती है और उसका वे उपयोग कर सकती हैं।

स्त्रियाँ शक्तिस्वरूपिणी होती हैं; लक्ष्मीस्वरूपिणी होती हैं, ज्ञानस्वरूपिणी होती हैं, लेकिन वे अपने भीतर छिपे हुए स्वरूप को देख नहीं पाई हैं, उसे उजागर नहीं कर पाई हैं। महिलाओं-स्त्रियों के ये रूप जितने उभरेंगे, उतनी ही दक्षता के साथ वे अपना कर्त्तव्य-निर्वहन कर सकेंगी और जितना इन रूपों को उपेक्षित किया जाएगा, स्त्रियाँ उतनी ही विवश जीवन जीती रहेंगी।

हमें यदि अपने देश की प्रगति चाहिए तो देश की आधी आबादी को प्रगति के लिए आगे बढ़ना होगा। उसे शिक्षित करना, समर्थ बनाना, उसे सम्मान व सहयोग प्रदान करना हम सभी की नैतिक जिम्मेदारी है, जिसका हम सभी को पालन करना चाहिए। नारी की गौरव-गरिमा की रक्षा करना व उसे समर्थ-सक्षम बनाना उसी पुण्यकर्म के समान है, जितना देश को आजाद कराने में बलिदान हुए लोगों का था। आज नारी को उसकी पराधीनता से मुक्त करना है और उसे स्वतंत्र करके सुसंस्कारवान बनाने का दायित्व भी निभाना है, उसे यथोचित सम्मान-सत्कार देना है, ठीक उसी तरह, जिस तरह हम भारत माँ को सम्मान-सत्कार देते हैं। तभी हमारे देश में पुनः सुख-समृद्धि-ज्ञान-शक्तिसंपन्न सपूतों की बाढ़ आएगी, जो पूरे विश्व को अपनी महान संस्कृति का परिचय करा सकेगी। ❀

राजा किसी बात पर अपने मंत्री से क्रोधित हो गया तो उसने उसे राज्य की सबसे ऊँची मीनार पर नजरबंद करवा दिया। उसकी पत्नी बहुत चिंतित हुई कि अब उसके पति का क्या होगा? पर मंत्री पूर्णतया निश्चिंत था। उसने धीरे से अपनी पत्नी से कहा—"तुम बस, रेशम का पतला सूत मेरे पास पहुँचा देना, मैं मुक्त हो जाऊँगा।" यह जानकर पत्नी बहुत आश्चर्यचकित हुई और सोचने लगी कि भला सूत वहाँ तक कैसे पहुँचाया जाए और पहुँचा भी दें तो उससे पति कैसे आजाद होंगे?

इसी उधेड़बुन में वह अपने गुरु के पास पहुँची और उसने उन्हें सारी समस्या बताई। गुरु मुस्कराए और बोले—"पुत्री! तू एक भृंगी (कीड़ा) पकड़कर ला और उसके पैरों में सूत बाँध दे, फिर उसकी मूँछ के बालों पर शहद की बूँद टपकाकर उसे मीनार की चोटी की ओर मुँह करके छोड़ देना।" पत्नी को कुछ समझ में न आया, पर उसने गुरु की आज्ञा का पालन किया। भृंगी शहद की सुगंध का पीछा करते-करते मीनार की सबसे ऊँची मंजिल पर जा पहुँचा। सूत के वहाँ पहुँचने पर उसके सहारे डोरी और डोरी के सहारे रस्सा वहाँ पहुँचाया गया। रस्से का सहारा लेकर मंत्री वहाँ से मुक्त हो गया। साधारण-सी आशा के सहारे जब एक कीड़ा मीनार के बुर्ज तक जा पहुँचा, तो मनुष्य ज्यादा विभूतियों का स्वामी है, यदि वह ठान ले तो जीवन में एक से बढ़कर एक ऊँचाइयों को प्राप्त कर सकता है।

पर्व विशेष (गीता जयंती)

आत्मा की अमरता के संदेश का पर्व

श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें संपूर्ण मानव जाति के लिए संदेश निहित है। यह ग्रंथ धर्म, जाति, रीति-रिवाज, परंपराएँ सभी से ऊपर उठकर मानव के जीवन-दर्शन को स्पष्ट करता है। इस ग्रंथ में वे सभी बातें व तथ्य सूत्ररूप में हैं, जिन्हें न जानने के कारण आज मनुष्य जाति पतन के मार्ग की ओर अग्रसर है। गीता में भारतीय संस्कृति और अध्यात्म का प्राण समाया हुआ है। इस ग्रंथ को जितनी बार पढ़ा जाए, उतनी ही बार कुछ नया बोध मिलता है, नई प्रेरणा मिलती है। गीता के श्लोक मात्र शब्दों से बने अक्षर नहीं हैं, बल्कि इनमें दिव्य ऊर्जाओं के स्रोत समाए हैं। इन श्लोकों से भगवान का संबंध है; क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण ने अपने दिव्यरूप में, चेतना के उच्चतम शिखर पर स्थिर होकर इसे गाया है। यह गीता किसी एक व्यक्ति अर्जुन के लिए नहीं, बल्कि उन सभी के लिए है, जो अर्जुन के समान मन:स्थिति में हैं। यह गीता उन सभी के लिए है, जो जिज्ञासु हैं और मनुष्य जीवन की सही राह के बारे में जानना चाहते हैं।

गीता की वाणी दिव्य है। इसमें सभी उपनिषदों व वेदों का सार निहित है। इसमें कुल अठारह अध्याय हैं और हर अध्याय के अंत में यह लिखा गया है कि यह श्रीकृष्ण-अर्जुन का संवाद है, उपनिषद्, ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र है और उस अध्याय से संबंधित विशेष योग का नाम है। हमारे धर्मग्रंथों में कई तरह की गीताओं का वर्णन है। गीता अर्थात जिसमें गीत गाया गया हो। लेकिन इस गीता का विशेष नाम 'श्रीमद्भगवद्गीता' है; क्योंकि इसमें जो गीत है, वह भगवान के द्वारा गाया गया है। यह गीता सूपनिषद् है अर्थात यह सुंदर उपनिषद् है। उपनिषद् वह है, जिसमें शिष्य गुरु के समीप बैठकर ज्ञान अर्जित करता है। इस गीता में भी अर्जुन शिष्य की भूमिका में है और वह जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण के समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करता है, जो कि सबसे सुंदर व सर्वोत्कृष्ट पल हैं।

इसे योगशास्त्र कहा गया है। आत्मा के परमात्मा से मिलन का नाम योग है और शास्त्र वह, जिसमें वस्तुस्थिति की परिभाषा, विवरण, साधना की विधियाँ, तत्त्वविवेचना, परिणाम सब कुछ निहित होती हैं, और गीता में उपर्युक्त सभी चीजें पिरोई हुई हैं। गीता ब्रह्मविद्या है। ब्रह्म अर्थात जो जीवन का आधार व सार है और इसी कारण ब्रह्मविद्या वेदांत का आधार है, वेदों का सार है। गीता में यह भी निहित है।

गीता के अठारह अध्यायों में अठारह विशेष योगों का वर्णन है, जिनके नाम हैं—(१) विषाद् योग, (२) सांख्ययोग, (३) कर्मयोग, (४) ज्ञानकर्मसंन्यास योग, (५) कर्मसंन्यास योग, (६) आत्मसंयम योग, (७) ज्ञानविज्ञान योग, (८) अक्षरब्रह्म योग, (९) राजविद्या राजगुह्य योग, (१०) विभूति योग, (११) विश्वरूप दर्शन योग, (१२) भक्तियोग, (१३) क्षेत्रक्षेत्रज्ञ विभागयोग, (१४) गुणत्रय विभाग योग, (१५) पुरुषोत्तम योग, (१६) दैवासुर संपद्विभाग योग, (१९) श्रद्धात्रयविभाग योग, (१८) मोक्षसंन्यास योग। गीता में अठारह प्रकार के योगों में भी तीन प्रमुख योग हैं—कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग। इन तीनों योगों में अठारह प्रकार के योग निहित हैं। इसलिए गीता के एक से लेकर छह अध्याय में 'कर्मयोग', सात से लेकर बारह अध्याय में 'भक्तियोग', और तेरह से लेकर अठारह अध्याय में 'ज्ञानयोग' का सार निहित है।

गीता के कर्मयोग का तात्पर्य है—'शुभ व निष्काम कर्म करना', भक्तियोग है—'भगवच्चेतना को धारण करना' और ज्ञानयोग है—'भगवद्तत्त्व को जानना'। ये तीनों प्रकार के योग गायत्री मंत्र के तीन चरणों में निहित हैं। गायत्री मंत्र के प्रथम चरण **'तत्सवितुर्वरेण्यं'** में भगवच्चेतना को वरण करने के बारे में कहा गया है, यह तभी संभव है, जब हम शुभ व निष्काम कर्म करें। द्वितीय चरण **'भर्गो देवस्य धीमहि'** में यह भाव निहित है कि हम तेजस्विता को धारण करें अर्थात भगवच्चेतना को धारण करें; क्योंकि भगवान वही है, जिसने भर्ग अर्थात दिव्य तेज को धारण किया है। भर्ग को धारण करना सरल नहीं होता, इसके लिए सुपात्र होना जरूरी है।

कच्ची मिट्टी के घड़े में पानी भरकर नहीं रखा जाता; क्योंकि पानी के संपर्क में आते ही वह बिखरकर टूट जाएगा और घड़े का अस्तित्व नहीं रह जाएगा। कच्ची मिट्टी के घड़े में पानी भरने से पूर्व उस घड़े को आग में पकाया जाता है। पक जाने पर वह मजबूत हो जाता है। फिर चाहे कितना भी पानी भरो, वह नहीं टूटता। उसी तरह हमारा शरीर कच्ची मिट्टी की तरह होता है, उसमें भगवान का भर्ग प्रवेश होने पर तभी स्थिर रह सकता है, जब वह तप की भट्ठी में भली प्रकार पकाया गया हो, और पककर मजबूत हो गया हो। इसलिए भगवच्चेतना को धारण करना साधना का द्वितीय चरण है। प्रथम चरण—भगवच्चेतना को वरण करने का है, धारण करने का नहीं।

गायत्री मंत्र का तृतीय चरण **'धियो यो नः प्रचोदयात्'** अर्थात ज्ञान की ओर गमन है, जो भगवद्तत्त्व को जानने से होता है। भगवद्तत्त्व परमात्मा हैं, जो वास्तव में जीवन का आधार और सर्वत्र व्याप्त हैं, वे ही हमारे चारों ओर विभिन्न रूपों में हैं। इस तरह गीता व गायत्री मंत्र हमें एक ही तरह का संदेश देते हैं। गीता के ७०० श्लोक हैं और गायत्री मंत्र एक ही है, जिसमें गीता के भावार्थों का सार समाया हुआ है। यदि गायत्री मंत्र को विस्तार से जानना है तो श्रीमद्भगवद्गीता का गहराई से पठन-मनन-चिंतन करना होगा और यदि गीता के सार को संक्षेप में समझना है तो गायत्री मंत्र के भावार्थ को समझना होगा।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण विभिन्न रूपों में हैं। पहले अध्याय में अर्जुन के सखा, संबंधी व मित्र के रूप में, दूसरे अध्याय में गुरु रूप में, दसवें अध्याय में विभूतियों के रूप में, ग्यारहवें अध्याय में ईश्वर रूप में और फिर सर्वव्यापी परमेश्वर के रूप में हैं। यह गीता धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में गाई गई है और इसलिए इस गीता की शुरुआत ही इन दोनों शब्दों से होती है। यह संसार भी एक तरह का धर्मक्षेत्र व कुरुक्षेत्र है, जिसमें हर व्यक्ति हर पल-हर क्षण युद्ध कर रहा है, जूझ रहा है—स्वयं से व अन्य लोगों से।

गीता में जो भी संदेश है, वह सांसारिक लोगों के लिए है, ताकि वे संसार के बंधनों को समझ सकें, संसाररूपी समरभूमि में जीत सकें और इस संसार से मुक्त हो सकें। गीता देह की नश्वरता और आत्मा की अमरता-शाश्वतता का संदेश देती है और गीता का संदेश भी आत्मा की अमरता की तरह शाश्वत है, देश-काल-समय की सीमा से बंधनमुक्त है। इस वर्ष की गीता जयंती (०२ दिसंबर) का पर्व हमें यह संदेश देता है कि हम ऐसे कर्म करें, जो हमें भव-बंधनों से मुक्त करें और हम गीता के इस अमृत रस का सदैव पान करते रहें।

एक संत श्रीमद्भगवद्गीता का माहात्म्य बता रहे थे। वे बोले—''भगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में एक ऐसा अद्वितीय शास्त्र कहा है, जिसका प्रत्येक शब्द सदुपदेश के समान है।'' शिष्य ने प्रश्न किया—''महाराज! ऐसा क्यों है?'' संत ने महाभारत का उद्धरण देते हुए कहा—''जब श्री वेदव्यास जी ने महाभारत में गीता पूर्णरूपेण लिखा दी तो उसके बाद वे बोले—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

अर्थात गीता सुगीता करने योग्य है। श्री गीता जी को भली प्रकार पढ़कर उनके अर्थ और भावों को अंतःकरण में धारण कर लेना ही मुख्य कर्त्तव्य है। जो ग्रंथ स्वयं पद्मनाभ भगवान श्रीविष्णु के मुखारविंद से निकला हो, तो फिर अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन हो सकता है।'' शिष्य की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

मरने के बाद हमारा क्या होता है ?

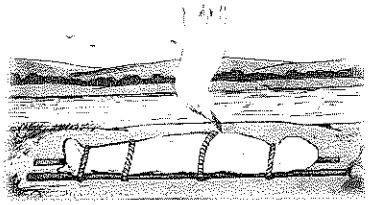

मरने के बाद हमारा क्या होता है ? यह प्रश्न आज भी लोगों के मन में ज्यों का त्यों है ? इसके कई जवाब तलाशे गए, लेकिन फिर भी चूँकि यह विषय अनुभवगम्य है, इसलिए यकीन हो पाना थोड़ा मुश्किल लगता है। मनुष्य की मृत्यु एक स्वाभाविक व अवश्यंभावी घटना है, यह घटना किसके साथ और कब घटेगी, यह सुनिश्चित कर पाना थोड़ा मुश्किल होता है और मृत्यु के बाद जीवात्मा की क्या गति होगी, यह जान पाना तो और भी मुश्किल होता है। फिर भी ऐसे तथ्य सामने आए हैं, जो यह बताते हैं कि मृत्यु के बाद हमारा क्या होता है ?

इन रहस्यों की जानकारी दी है उन लोगों ने, जो कुछ देर तक मृत रहकर पुनः जीवित हो गए। इन्होंने मृत्यु के बाद के प्रश्नों का उत्तर अपने-अपने ढंग से दिया और इन प्रश्नों को अपने अनुसंधान का विषय बनाया—फ्रांस के एक डॉक्टर डेलाकौर ने। इन्होंने मृत्यु के बाद पुनः जीवित होने वाले रोगियों और दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों की मनःस्थिति और उनकी मृत्यु के पहले चरण की अनुभूतियों का गहराई से अध्ययन, मनन और विश्लेषण किया। अपने अनुभवों को इन्होंने एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। डेलाकौर ने जिन व्यक्तियों को अपने अनुसंधान का विषय बनाया, वे अंधविश्वासी नहीं, बल्कि विभिन्न वर्गों से संबंधित लोग थे।

आज से लगभग ४५ वर्ष पूर्व एक बार चिकित्सक डेलाकौर ने फ्रांस के अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त अभिनेता डेनियल जीनत का इलाज किया। डेनियल को दिल का दौरा पड़ा था। उन्हें अस्पताल ले जाने में अधिक समय लग गया। जब डेनियल को ऑपरेशन थियेटर में ले जाकर उनके शरीर के साथ दिल की धड़कन रिकॉर्ड करने वाली मशीन लगाई गई, तो मशीन की सुई अपनी जगह पर स्थिर रही, इसका मतलब उनकी हृदयगति रुक चुकी थी।

इसके बाद क्या हुआ, इसका विवरण पुनः चेतना में आने के बाद डेनियल ने इन शब्दों में दिया—"मुझे लगा कि मैंने कमरे में तैरना शुरू कर दिया है। एक डॉक्टर ने मेरे समीप आकर मुझे जाँचा, फिर उसने गहरी साँस ली और पीठ मोड़कर चला गया। इसके बाद एक सहायक डॉक्टर ने चादर से मुझे पूरा ढक दिया। मैं उस समय बराबर चिल्ला रहा था, पर मेरी आवाज किसी तक पहुँच नहीं रही थी। कुछ देर मैं बहुत भयभीत रहा, लेकिन उसके बाद मैंने भय का अनुभव करना बंद कर दिया। इसके बाद मैंने देखा कि मेरी माँ और पिता वहाँ आए। उन्हें देखकर मैं अत्यधिक खुशी से भर उठा। इसके बाद मेरी माँ मुझे बाग में ले गई, जो रंगारंग फूलों से महक रहा था। वहाँ उस समय चारों ओर बच्चे ही बच्चे थे। वे सब खेल-कूद रहे थे। तभी मेरी माँ ने मुझसे कहा—"देखो! तुम्हारा बेटा पास्कल वहाँ खेल रहा है और वह भरपूर मजे में है। डेनियल, अब तुम यहाँ से लौट जाओ; क्योंकि जिंदगी अभी तुम्हारा इंतजार कर रही है।" इस विवरण में आने वाले डेनियल के माता-पिता की कुछ वर्ष पहले मृत्यु हो चुकी थी। इसके कुछ समय बाद ही उसका बेटा पास्कल भी इस संसार से विदा हो गया था।

उस समय डेनियल के ऑपरेशन थियेटर में डॉक्टरों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही, जब उन्होंने यह देखा कि दिल की धड़कन रिकॉर्ड करने वाली थमी हुई मशीन धीरे-धीरे हरकत में आ गई है और इसके बाद डेनियल के चेहरे पर भयानक पीड़ा और चेतना के चिह्न लक्षित होने लगे। सहसा उसने अपनी आँखें खोलीं और वह महसूस करने लगा कि वह अभी जीवित है। इस प्रकार दिल का दौरा पड़ने के बाद से लेकर पुनः जीवित होने के बीच उसने जो सफर तय किया, उस समय वह अपने मृत माता-पिता और नन्हे बच्चे से मिल आया।

उपर्युक्त घटना के इस विवरण से यह स्पष्ट होता है कि स्थूलजगत के अलावा सूक्ष्मजगत भी है, जिसमें मृत्यु के बाद ही मनुष्य प्रवेश कर पाता है और उस जगत में वह अपने मृत संबंधियों से मिल सकता है। चूँकि डेनियल की वास्तविक मृत्यु नहीं हुई थी, केवल थोड़ी

देर के लिए उसकी जीवात्मा ने अपने शरीर को छोड़कर सूक्ष्मजगत में प्रवेश किया था, इसलिए मृत्यु के बाद जीवात्मा की होने वाली गति को वह नहीं जान सका, केवल स्वप्न के सदृश होने वाले अनुभव को ही वह बता पाया।

मृत्यु किस प्रकार होती है? इस संबंध में तत्त्वदर्शी योगियों का मत है कि मृत्यु से कुछ समय पूर्व मनुष्य को बड़ी बेचैनी, पीड़ा और छटपटाहट होती है; क्योंकि सब नाड़ियों में से प्राण खिंचकर एक जगह एकत्र होता है, किंतु पुराने अभ्यास के कारण वह फिर उन नाड़ियों में खिसक जाता है, जिससे एक प्रकार का आघात लगता है, यही पीड़ा का कारण है। रोग, आघात या अन्य जिस कारण से मृत्यु हो रही हो, तो उससे भी कष्ट उत्पन्न होता है। मरने से पूर्व प्राणी कष्ट पाता है, चाहे वह उसे प्रकट कर सके या न कर सके। लेकिन जब प्राण निकलने का समय बिलकुल समीप आ जाता है, तो उसे एक प्रकार की मूर्च्छा-सी आ जाती है और उस अवस्था में उसका प्राण शरीर से बाहर निकल जाता है।

जब मनुष्य मरने को होता है तो उसकी समस्त बाह्य शक्तियाँ एकत्र होकर अंतर्मुखी हो जाती हैं और फिर स्थूलशरीर से बाहर निकल पड़ती हैं। इस समय मनुष्य कुछ ही क्षणों के अंदर अपने समस्त जीवन की घटनाओं को फिल्म की तरह देखता है; क्योंकि समस्त जीवन में जो घटनाएँ मनुष्य भूल जाता है, वह भी मस्तिष्क के सूक्ष्मकोष्ठकों में सुषुप्त अवस्था में पड़ी रहती हैं और अंत समय में सब एकत्र होकर एक साथ निकलने के कारण जाग्रत एवं सजीव हो जाती हैं तथा सार रूप में संस्कार बनकर मृतात्मा के साथ चली जाती हैं। ऐसा कहते हैं कि यह घड़ी अत्यंत ही पीड़ा की होती है; क्योंकि इस समय मनुष्य को अनुभव होता है कि उसने अपने बहुमूल्य जीवन का वैसा सदुपयोग नहीं किया, जैसा उसे करना चाहिए था।

मृतात्मा स्थूलशरीर से अलग होने पर सूक्ष्मशरीर में उपलब्ध हो जाती है। यह सूक्ष्मशरीर ठीक स्थूलशरीर की ही बनावट का होता है। मृतक को बड़ा आश्चर्य लगता है कि मेरा शरीर कितना हलका हो गया है, वह हवा में पक्षियों की तरह उड़ सकता है और इच्छा मात्र से चाहे जहाँ आ-जा सकता है। स्थूलशरीर छोड़ने के बाद वह अपने मृतशरीर के आस-पास ही मँडराता रहता है। मृतशरीर के आस-पास प्रियजनों को रोता-बिलखता देखकर वह उनसे कुछ कहना चाहता है या वापस अपने पुराने शरीर में लौटना चाहता है, पर उसमें वह सफल नहीं होता।

एक प्रेतात्मा ने अपने मरने के बाद की स्थिति का इस प्रकार वर्णन किया—(प्लेन्चेट द्वारा रिकॉर्डेड) "मैं मरने के बाद बड़ी अजीब स्थिति में पड़ गया। स्थूलशरीर में और प्रियजनों के प्रति मोह होने के कारण मैं उनके संपर्क में आना चाहता था, पर लाचार था। मैं सबको देखता था, पर मुझे कोई नहीं देख सकता था, मैं सबकी वाणी सुनता था, पर मैं जो बड़े जोर-जोर से कहता था, उसे कोई भी नहीं सुनता था। इन सब बातों से मुझे कुछ कष्ट तो होता था, पर कुछ अपने नवीन शरीर के बारे में खुशी भी थी कि मैं कितना हलका हो गया हूँ और कितनी तेजी से चारों ओर उड़ सकता हूँ। जीवित अवस्था में मैं मौत से डरा करता था, यहाँ मुझे डरने लायक कुछ भी बात मालूम नहीं हुई। सूक्ष्मशरीर में प्रस्फुटित होने के कारण पुराने शरीर से कुछ विशेष ममता न रही; क्योंकि नया शरीर पुराने की अपेक्षा हर दृष्टि से अच्छा था। मैं अपना अस्तित्व वैसा ही अनुभव करता था, जैसा कि जीवित दशा में। कई बार मैंने अपने हाथ-पावों को हिलाया-डुलाया और अपने अंग-प्रत्यंगों को देखा, पर मुझे ऐसा नहीं लगा, मानो मर गया हूँ। तब मैंने समझा कि मृत्यु से कुछ डरने की बात नहीं है, वह शरीर-परिवर्तन की एक मामूली सुखसाध्य प्रक्रिया है।"

प्रतिभा तेजस्विता को कहते हैं। यह चेहरे की चमक या चतुरता नहीं, वरन मनोबल पर आधारित ऊर्जा है।

इस तरह मृत्यु जीवन का अनिवार्य व शाश्वत सत्य है, जिसे हम सबको वरण करना है। मृत्यु शब्द से सभी परिचित हैं, लेकिन इसके अनुभव से अपरिचित हैं, लेकिन इसका परिचय मिलता सभी को है। मृत्यु कष्टकर व सुखद, दोनों तरह की होती है; क्योंकि यह हमारे जीवन की समाप्ति की अंतिम प्रक्रिया है, इसलिए जीवनभर किए जाने वाले कर्मों के अनुसार ही जीवात्मा की गति होती है और उसी अनुरूप मृत्यु मिलती है। इसलिए उचित यही है कि समय रहते अपनी मृत्यु को सुखद बनाया जाए और ऐसा सतत शुभकर्मों को करने से ही संभव है।

प्रकृति के रहस्यों का अनावरण

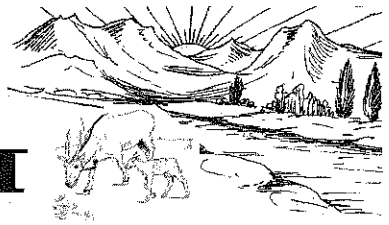

पांडिचेरी आश्रम की श्रीमाँ जिनका नाम मीरा था, रात में सोते समय ध्यान किया करती थीं। तेमसेम घाटी में एक सुंदर एवं मनोरम उद्यान था, वहाँ पर एक कमरे में वे रहती थीं। उस कमरे में वे नित्य प्रति ध्यान किया करती थीं। वे अपने अंतर्दर्शन में एक अद्‌भुत व्यक्ति को अक्सर देखा करती थीं। उस व्यक्ति की आँखें अत्यंत आकर्षक एवं गंभीर थीं। उन्हें लगता था कि वे उनकी चेतना का अभिन्न अंग हैं, परंतु उन्हें उनका पता नहीं मालूम था कि वे कहाँ और कब मिलेंगे?

मीरा फ्रांस में रहती थीं और भारतीय संस्कृति से बहुत परिचित नहीं थीं, फिर भी वे अपने अंतर्दर्शन में दीखने वाले उस दिव्य एवं रहस्यमय व्यक्ति को 'श्रीकृष्ण' पुकारती थीं। वे आश्वस्त थीं कि उनके कृष्ण इसी धरती पर कहीं हैं और उनकी पुकार उन तक अवश्य पहुँचेगी। अत: वे उचित समय की प्रतीक्षा कर रही थीं। इसी क्रम में उन्हें अपने ध्यान में एक गुह्य एवं रहस्यमय चक्र का दर्शन होता था, जिसका गूढ़ अर्थ था। मीरा इस गूढ़ता का अनावरण नहीं कर पाती थीं। उन्हें विश्वास था कि जो इस चक्र का रहस्य अनावृत कर सकेगा, वही उनका श्रीकृष्ण होगा।

एक रात्रि ध्यान की इसी अंतर्यात्रा में वे खोई हुई थीं कि एक धीमी एवं हलकी आवाज ने उन्हें जगा दिया। मीरा (श्रीमाँ) आवाज के प्रति अत्यंत संवेदनशील थीं। जो आवाज सामान्य लोगों को पता भी नहीं चलती थी, उन्हें पता चल जाती थी। ध्यान देने पर उन्हें ब्रह्मांडीय ध्वनि सुनाई देती थी। अपने शरीर के अंग-प्रत्यंग के क्रिया-व्यापार की आवाज को भी वे सुन लेती थीं। मीरा ने आँख खोलकर देखा, उनके अँधेरे कमरे का एक कोना चंद्रमा के धवल एवं श्वेत प्रकाश से जगमगा रहा था। वह रात कृष्णपक्ष की थी। आसमान में चंद्रमा नहीं था, फिर चाँदनी जैसी वह चीज क्या थी, जो जगमगा रही थी।

मीरा ने देखा कि वह चमकीली चीज कोई और नहीं, बल्कि एक छोटा-सा बौना था। वह बौना बहुत छोटा-सा था। उसका सिर बड़ा था। उसके सिर पर नुकीली टोपी एवं पैरों में गहरे हरे रंग के नुकीले जूते थे। उसकी दाढ़ी लंबी एवं श्वेत थी। बौने का शरीर श्वेत बरफ से ढका हुआ था। बौना अद्‌भुत लग रहा था। श्रीमाँ ने कहा—"तुम कौन हो और यहाँ क्यों आए हो?" श्रीमाँ इन प्राकृतिक शक्तियों से न केवल परिचित थीं, बल्कि उन्हें नियंत्रित एवं नियमित करने की क्षमता भी रखती थीं।

बौना श्रीमाँ को देखकर मुस्कराया और बोला—"मैं आपको नमन करता हूँ। मैं बरफ का राजा हूँ और मुझे यहाँ आमंत्रित किया गया है।" श्रीमाँ ने कहा—"तुम आ रहे हो अर्थात यहाँ बरफ गिरने वाली है। यह कैसे संभव है; क्योंकि यह स्थान रेगिस्तान के अत्यंत समीप है।" बौने ने विनम्रता से जवाब दिया—"आपने फिर इस तेमसेम की रेगिस्तानी घाटी में देवदार वृक्ष लगाने का आदेश क्यों दिया?"

श्रीमाँ को ध्यान आया। तेमसेम सहारा के नजदीक है और यहाँ का वातावरण शुष्क और गरम रहा करता है। विशेषज्ञों के अनुसार—बंजर पहाड़ अपनी गरमी एवं शुष्कता से कहीं समीप बहने वाली नदी को सोख न लें, इसके लिए इस घाटी में वृक्ष लगाना आवश्यक था। अत: वहाँ के प्रशासन ने हरीतिमा-संवर्द्धन एवं नदी के संरक्षण हेतु पास-पड़ोस की पहाड़ियों पर वृक्षारोपण करने का आदेश दिया। प्रशासन ने चीड़ के वृक्षों के लिए आदेश दिया था; क्योंकि समुद्री चीड़ अलजीरिया में खूब पनपते हैं, परंतु दैवयोग से चीड़ की जगह देवदार के वृक्षों का आदेश चला गया। देवदार के वृक्ष बरफीले वृक्ष होते हैं। रेगिस्तान में ये वृक्ष मुरझा जाते हैं। फिर भी इन वृक्षों को बड़ी सावधानी से रोपा गया। चार-पाँच वर्षों में तेमसेम की घाटी देवदार के वृक्षों से हरी-भरी हो चुकी थी। बौना (बरफ का राजा) इन्हीं देवदार वृक्षों की ओर संकेत कर रहा था कि ये वृक्ष हमें आमंत्रित करते हैं।

श्रीमाँ के सम्मुख यह निवेदन करके वह बौना वहाँ से चला गया, साथ ही चंद्रकिरण-सी ज्योति भी उसके

साथ विलीन हो गई। श्रीमाँ ने लैंप जलाया और देखा कि जहाँ बरफ का राजा खड़ा था, वहाँ पानी की छोटी-सी डबरी बन गई थी। वहाँ पर बरफ का एक छोटा प्राणी आया था और संकेत देकर चला गया था। श्रीमाँ इन प्राणियों एवं सूक्ष्मशरीरी आत्माओं से संबंध स्थापित कर सकती थीं। अत: वे जहाँ भी जाती थीं, ऐसे प्राणियों से उनका स्वत: ही संपर्क स्थापित हो जाता था।

अगले दिन प्रात: जब श्रीमाँ उठीं तो तेमसेम घाटी को देखकर मुस्कराईं; क्योंकि घाटी के देवदार वृक्ष बरफ से ढक गए थे। बरफ से पूरी घाटी ढक गई थी। लग ही नहीं रहा था कि यह घाटी रेगिस्तान के समीप है। बरफ से ढकी हुई यह घाटी उत्तरी ध्रुवप्रदेश एवं हिमालय का एहसास दिला रही थी, जहाँ बरफ गिरती है, वहाँ ऐसा दिव्य एवं आकर्षक दृश्य दिखाई देता है। सूर्योदय की सुनहली रश्मियों से श्वेत बरफ सुनहली दिखाई दे रही थी। वहाँ के लोगों के लिए यह प्रथम एवं अद्‌भुत अनुभव था, जो इसके पहले कभी नहीं हुआ था और कल्पना से भी परे था, परंतु इस अद्‌भुत प्राकृतिक पहेली का संकेत वह बौना (बरफ का राजा) पहले से ही श्रीमाँ के पास दे गया था।

श्रीमाँ प्रकृति की इस पहेली से पूर्व परिचित थीं। अत: उन्हें आश्चर्य नहीं होता था, बल्कि वे प्रकृति के इस तरह के रहस्यों के अनावरण से आनंदित होती थीं। इसी बीच एक दिन उनके ध्यान में प्राप्त अंतर्दर्शन का रहस्य भी अनावृत हो उठा था। श्रीमाँ के कृष्ण कोई और नहीं थे, बल्कि श्रीअरविंद थे और उन्हें यह संकेत मिले कि पांडिचेरी में श्रीमाँ से उनकी शीघ्र ही भेंट संभव होगी।

पांडिचेरी में जब श्रीमाँ श्रीअरविंद से मिलीं तो श्रीअरविंद ने श्रीमाँ के इस रहस्यमय चक्र के बारे में स्पष्ट किया कि वह कमल चक्र था, जिसका अर्थ चेतना की कली का दिव्य सूर्य की ऊष्मा के प्रति रहस्यमय उद्‌घाटन है। श्रीमाँ को भावी उद्‌देश्य एवं लक्ष्य स्पष्ट हो गया था कि धरती की चेतना को परिवर्तित करने हेतु उन्हें श्रीअरविंद के साथ मिलकर महत्तर कार्य करना है और उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन श्रीअरविंद के चरणों में समर्पित कर दिया। ❀

एक धनी व्यक्ति सुकरात से मिलने पहुँचा। वहाँ उनसे बातें करते-करते वह अपनी तारीफों के पुल बाँधने लगा। जब उसकी डींगें काफी बढ़ गईं तो सुकरात ने पृथ्वी का एक नक्शा मँगवाया और उससे पूछा—"मित्र! ये बताओ कि इस नक्शे में तुम्हारा घर कहाँ है?" घर तो उस नक्शे में उसे कहाँ मिलता, पर बहुत प्रयत्न करने के बाद चने के दाने के बराबर उसका देश उसे उस नक्शे में दिखाई पड़ा।

सुकरात वह दिखाते हुए उससे बोले—"मित्र! परमात्मा ने अनंत विस्तार के ब्रह्मांड की रचना की है। उस ब्रह्मांड में अनेक ग्रह हैं और उन्हीं में से एक ग्रह पृथ्वी भी है। इस पृथ्वी पर भी अनेक देश हैं और उनमें से एक तुम्हारा देश भी है। तुम्हारे देश में भी अनेक राज्य हैं और उनमें से एक राज्य तुम्हारा है। तुम्हारे राज्य में भी अनेक नगर हैं और उनमें से एक नगर तुम्हारा है। तुम्हारे नगर में भी अनेक धनपति होंगे और उनमें से एक तुम हो। जब परमात्मा के इतने बड़े साम्राज्य में मनुष्य का स्थान इतना छोटा-सा है तो उसके लिए इतना व्यर्थ अहंकार करने से क्या लाभ!" थोड़ा रुककर सुकरात आगे बोले—"सांसारिक उपलब्धियों पर गर्व करने से बेहतर है कि तुम उस सौभाग्य को विकसित करने का प्रयत्न करो, जिससे तुम्हारा जीवन सार्थक बन सके।"

तनावपूर्ण न बनने दें अपना जीवन

आज तनाव से हर कोई परिचित है; क्योंकि तनाव ने हर मनुष्य के जीवन में अपनी जगह बना ली है। स्कूल में पढ़ने जाने वाला बच्चा हो या कॉलेज में पढ़ने वाला किशोर, जीवन की हर अवस्था में इसका प्रवेश हो गया है। और हो भी क्यों न! आज हर व्यक्ति जीवन की एक ऐसी दौड़ में शामिल है, जिसमें परिस्थितियाँ उसके ऊपर दबाव डालती हैं। उसे काम करने के लिए मजबूर करती हैं। वह काम करना चाहे या न चाहे, उसे काम करना पड़ता है। यदि वह काम नहीं करता, तो उसके ऊपर काम करने का दबाव बढ़ता जाता है, जो उसके लिए तनाव का कारण बनता है और उसके स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाता है। कई बार अपने इस तनाव को कम करने के लिए ही वह कार्य करता है।

आज की जिंदगी में तनाव ही है, जो मनुष्य को आगे बढ़ने के लिए धक्का देता है। लेकिन यही तनाव जब जरूरत से ज्यादा हो जाता है, तो ढेर सारी परेशानियों का सबब बन जाता है और इनमें प्रमुख रूप से सबसे पहले स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ आती हैं, रिश्तों के समीकरण गड़बड़ाते हैं, और जिस क्षेत्र में हम कार्य करते हैं, वहाँ का कार्य-उत्पादन भी प्रभावित होता है। तनाव होने पर कभी लोग इससे जूझ जाते हैं और कभी इसके सामने घुटने टेक देते हैं, अपनी पराजय मान लेते हैं। जो व्यक्ति तनाव से जूझ जाते हैं, वे आगे बढ़ जाते हैं और बहुत सुकून महसूस करते हैं; क्योंकि तनाव से जूझकर उसे पराजित करना, उसके स्तर को कम कर देना बड़ी सफलता होती है, जिसके लिए वह व्यक्ति बहुमूल्य पुरस्कार का हकदार होता है। आंतरिक रूप से प्रकृति उसे वह बेशकीमती पुरस्कार देती है—मन की शांति एवं सुकून के रूप में।

जब हम अपने जीवन में आने वाले तनाव से घबराते हैं, उससे अपना पीछा छुड़ाना चाहते हैं तो इसका मतलब है कि हम कुछ करना नहीं चाहते, आगे नहीं बढ़ना चाहते। जहाँ हैं, जैसे हैं, बस, उसी में खुश रहना चाहते हैं। जीवन की हर परिस्थिति एक चुनौती लेकर आती है और जिसे स्वीकारने पर हमें उस कार्य को करना पड़ता है। यदि हम ऐसा नहीं करते तो चुनौती पूरी न कर पाने का तनाव होता है; क्योंकि उस चुनौती से जुड़े हुए बहुत सारे आयाम होते हैं, जो हम पर निरंतर दबाव डालते हैं कि हमें उन्हें पूरा करना है। यह दबाव ही धीरे-धीरे तनाव का कारण बन जाता है।

देखा जाए तो तनाव हमें उन कार्यों में अधिक होता है, जिनमें मानसिक रूप से कार्य करना पड़ता है, दिमाग अधिक लगाना पड़ता है। यदि हम इन कार्यों के अभ्यस्त हैं तो ज्यादा परेशानी नहीं होती, अन्यथा इस तरह के कार्यों को पूरी सहजता के साथ न कर पाने के कारण तनाव होता है, जैसे—बच्चों द्वारा गणित की समस्याओं को हल न कर पाने पर तनाव, प्रतिदिन का होमवर्क न करने पर तथा बाद में बहुत सारा होमवर्क एक साथ पूरा करने का तनाव आदि।

तनाव के विविध कारण हैं। इनमें से एक कारण—मिलने वाले परिणामों की आशंका के कारण उत्पन्न होने वाला तनाव है, जैसे—परीक्षा से मिलने वाले परिणामों की आशंका से उत्पन्न तनाव, बारिश न होने पर या अधिक होने पर खेती के खराब होने की आशंका के कारण उत्पन्न तनाव, भविष्य में कुछ न कर पाने की चिंता के कारण उत्पन्न तनाव आदि। अर्थात तनाव उन कारणों से भी होता है, जिन पर हमारा कोई वश नहीं है, लेकिन फिर भी अपने विचारों को सकारात्मक दिशा देकर बहुत हद तक हम इसे दूर कर सकते हैं। परिणामों की आशंकाओं के कारण उत्पन्न तनाव को दूर करने का एक उपाय यह भी है कि हम खाली न बैठें, अपने लिए कुछ न कुछ काम ढूँढ़ लें और उसे करते रहें। इससे तनाव पूरी तरह से मन पर हावी नहीं होगा और समय का सदुपयोग होते हुए अन्य कार्य भी पूरे होंगे।

निरंतर तनाव में रहने से व्यक्ति का चेहरा भी तनावग्रस्त दीखने लगता है और असमय ही उसके शरीर को जर्जर व बूढ़ा कर देता है। आज हमें तनाव में जीने की इस कदर आदत पड़ गई है कि हम हर दिन तनाव के साथ

ही उठते हैं और हर रात तनाव के साथ ही सोते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हमें हमेशा तनाव के साथ ही अपने जीवन का शेष समय व्यतीत करना होगा, इससे मुक्ति का कोई उपाय नहीं? तो ऐसा बिलकुल नहीं है।

तनावमुक्त रहकर भी काम किया जा सकता है और अपनी जिंदगी को तनावरहित किया जा सकता है। लेकिन इसके लिए हमें किसी भी परिस्थिति में तनावमुक्त रहने का अभ्यास करना होगा। इस अभ्यास में सबसे प्रमुख बात यह है कि जो भी जरूरी कार्य हैं, उनकी प्राथमिकताएँ तय करते हुए उन्हें पूरा करते चलें, ताकि अनावश्यक कार्यों का बोझ सिर पर न आए। यदि फिर भी बहुत सारे कार्यों का दबाव होता है तो इन्हें पूरा करने के लिए अन्य किसी का सहयोग ले लें और बिना तनाव के जितना इन्हें कर सकते हैं करें, पर तनाव न लें।

इस बात का सदैव ध्यान रखें कि जो भी तनाव हमें मिल रहा है, वह हमारे ही द्वारा कार्यों को समय पर पूरा न करने के कारण उत्पन्न हुआ है और हम ही हैं, जो इसे दूर कर सकते हैं। दूसरी बात है कि हमारी दिनचर्या में बहुत सारे ऐसे कार्य होते हैं, जिनमें हमें अपना ज्यादा दिमाग लगाने की जरूरत नहीं होती और हम उन्हें तनावमुक्त होकर करते हैं, जैसे—साफ-सफाई करना, भोजन बनाना, पसंद के गाने सुनना, फिल्में या सीरियल देखना या अपना शौक पूरा करने वाले कार्य करना आदि। इन कार्यों में हमारा समय लगता है और तनावमुक्त रहकर इनमें अपना भरपूर समय देते हैं। लेकिन हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे समय का बचाव कैसे हो, ताकि हम अपने जरूरी कार्यों को भी पर्याप्त समय दे सकें।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है कि हमें अपनी जिंदगी में हँसने-मुस्कराने की आदत डालनी चाहिए; क्योंकि हँसते हुए चेहरे में कभी तनाव नहीं होता और हँसते-मुस्कराते हुए कार्य करने से हमारी कार्य करने की क्षमता भी बढ़ जाती है। चिकित्सकों के अनुसार—हँसना मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा प्राकृतिक पोषण है। इसी कारण चिकित्सक अक्सर यही सलाह देते हैं कि खुश रहिए और मुस्कराते रहिए। स्वाभाविक हँसी से हमारे शरीर के आंतरिक अंग हिलते हैं और हम बहुत अच्छा महसूस करते हैं। इससे हमारे तनाव के हॉर्मोन कम होते हैं, जो हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को और मजबूती देते हैं। इसलिए हमें मुस्कराते हुए जीना चाहिए और हँसते-मुस्कराते हुए प्रसन्न मन से अपना काम करना चाहिए। यह भी आवश्यक नहीं कि हम सारा दिन व्यर्थ हँसते रहें। तनाव कम करने का कार्य, चेहरे पर आई एक हलकी-सी मुस्कराहट भी कर सकती है।

तीसरी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम अपनी जीवनशैली को सुधारें, हमारे खान-पान में पौष्टिकता हो, हम समय पर सोएँ और समय पर उठें, शारीरिक व्यायाम व ध्यान-साधना के लिए भी समय दें, ताकि हम अपने शरीर का ध्यान रखने के साथ-साथ अपनी मानसिक शक्तियों को भी विकसित कर सकें और अपनी क्षमता का परिपूर्ण विकास कर सकें।

तनाव ऐसा भाव है, जो हमारे मन में कभी भी और कहीं भी प्रकट हो सकता है। इसे दूर करने का उपाय यही है कि जिन कारणों से तनाव उत्पन्न हो रहा है, उनके निवारण का उपाय किया जाए। पर्याप्त श्रम, मानसिक शक्तियों का सही नियोजन व हँसता-मुस्कराता जीवन ही वे उपाय हैं, जो हमें तनावमुक्त कर सकते हैं।

उत्तमानां स्वभावोऽयं परदुःखासहिष्णुता।
स्वयं दुःखं च सम्प्राप्तं मन्यतेऽन्यस्य वार्यते॥
दयालुश्यदस्पर्श उपकारी जितेन्द्रियः।
एतेश्च पुण्यस्तम्भैस्तु चतुर्भिर्द्यार्यिते मही॥

अर्थात उनका स्वभाव उत्तम माना जाता है, जो सहिष्णु होते हैं और स्वयं कष्ट लेकर दूसरे का दुःख दूर करते हैं। दयालुता, अभिमानशून्यता, परोपकारिता और जितेंद्रिय होना—ये वे चार स्तंभ हैं, जिनके आधार पर यह धरती टिकी हुई है।

बदलें दृष्टिकोण, हों अभावमुक्त

इस दुनिया में ऐसा कोई नहीं है, जिसका अभाव से परिचय न हुआ हो। सब कुछ होते हुए भी किसी न किसी तरह का अभाव व्यक्ति को होता है और उसे दूर करने के लिए प्रयास भी होता है, लेकिन अभावों की सूची इतनी बड़ी होती जाती है कि उसे पूरा करने में जिंदगी बीत जाती है, लेकिन अभाव पूरे नहीं होते। किसी के पास पैसा नहीं है, तो किसी के पास घर नहीं है; किसी को नींद का अभाव है, तो किसी के पास समय नहीं है; किसी में सुंदरता की कमी है, तो कोई अस्वस्थ है; किसी के पास खुशी की कमी है, तो कोई शांति की कमी महसूस कर रहा है। इस तरह न जाने कितनी तरह की कमियाँ हैं, जिन्हें लोग दूर करना चाहते हैं, लेकिन प्रयास करने पर भी कुछ न कुछ अधूरा रह जाता है।

एक बहुत महत्त्वपूर्ण कथन है—'सब कुछ तो किसी के पास नहीं होता, पर कुछ न कुछ हर किसी के पास होता है।' जरूरी यह है कि हम 'कुछ न कुछ' पर भी अपना ध्यान केंद्रित करें, अन्यथा हमारे जीवन की दौड़ कभी थमेगी नहीं। हमारे मन का पूरा ध्यान इस बात पर केंद्रित होता है कि 'हमारे पास क्या नहीं है?' और उस खाली स्थान को भरने का हम प्रयास करने लगते हैं। हम कभी भी स्वयं से संतुष्ट नहीं रहते और बहुत कुछ होते हुए भी अभावों का रोना रोते हैं कि हमारे पास ये नहीं है। अगर अमुक वस्तु हमारे पास होती तो कितना अच्छा होता, परंतु उस वस्तु के मिलते ही उसका महत्त्व कम हो जाता है और थोड़े दिनों के बाद फिर कोई नई चीज पाने की इच्छा जाग जाती है। इस तरह यह क्रम चलता रहता है। न हम अपने अभावों को दूर करने वाली इन वस्तुओं से खुश होते हैं और न स्वयं से। इसे दूर करने का केवल एक ही तरीका है—'देखने का दृष्टिकोण'।

सही दृष्टिकोण के अभाव में जीवन में अभाव बना रहता है और पूरी तरह से दूर नहीं हो पाता। जिस समाज में हम रहते हैं, वहाँ हम अपने समान दूसरे लोगों को देखते हैं कि कौन कितनी प्रगति कर पाया है? किसके पास क्या है? और दूसरों से अपनी तुलना करने लगते हैं। जब हम अपने से कम स्तर के लोगों से अपनी तुलना करते हैं तो अहंकार पैदा होता है और अपने से अधिक संपन्न लोगों की ओर देखते हैं तो अभाव की भावना जन्म लेती है। दोनों ही परिस्थितियों में हम स्वयं की ओर नहीं देखते कि हमारे पास क्या है और स्वयं को अभावग्रस्त महसूस करते हैं।

दूसरों से तुलना करते हुए स्वयं को कम आँकने से यह लगता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि अभावों के कारण हमें कम प्यार या कम सम्मान मिल रहा है और इस तरह की सोच व्यक्ति को हीनताग्रस्त बना देती है तथा नकारात्मकता से भर देती है। यदि इस सोच को सकारात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यह एहसास हो सकता है कि हमारे पास जो कुछ भी है, वह किसी से कम नहीं है। हमने जो कुछ भी कमाया है, वह अपने प्रयास और परिश्रम से अर्जित किया है और उसकी तुलना दूसरों से करना उचित नहीं है; क्योंकि ऐसा करके हम स्वयं को कमजोर व हीन सिद्ध करते हैं। दूसरों की प्रगति देखकर खुश होना चाहिए और आगे बढ़ने की प्रेरणा लेनी चाहिए, लेकिन हर समय अपना ध्यान दूसरों पर केंद्रित रखते हुए अनावश्यक परेशान रहना, अपनी कमियों को निहारना बिलकुल भी ठीक नहीं है; क्योंकि इस तरह की सोच रखने से न हम कभी भी प्रगति कर सकते हैं और न ही अपना सही मूल्यांकन कर पाते हैं।

यदि हम अपने अभावों को सही अर्थों में दूर करना चाहते हैं तो सबसे पहले हमें स्वयं का मूल्यांकन करना आना चाहिए। हमें अपनी योग्यता, क्षमता को स्वीकारना आना चाहिए न कि उसे नकारना; क्योंकि इसी के माध्यम से हम कुछ कर पाते हैं। यह जरूर है कि योग्यता होने के बावजूद बहुत-सी चीजें ऐसी हैं, जो हमारी पहुँच से दूर होती हैं। हमारी जिंदगी भी शिकायतों से भरी है, लेकिन हम अकेले ऐसे व्यक्ति नहीं हैं, जो अभावों में जी रहे हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि इन अभावों के आगे हम हार मान गए हैं या इन अभावों को कोसते रहने की हमारी आदत हो गई है और हम अपनी उन

खुशियों से दूर होते जा रहे हैं, जो हमारी अपनी हैं और जिन्हें हम दूसरों को देकर उन्हें भी खुश कर सकते हैं।

अभावों को दूर करना है तो सबसे पहले हमें अपने जीवन की वास्तविकता को पहचानना होगा, अपनी योग्यता व क्षमता का सही आकलन करना होगा। जीवन को उसकी विविधता के साथ स्वीकारना होगा, तभी हम यह जान सकेंगे कि दूसरों से हमारी तुलना संभव नहीं है। किसी के जीवन का एक पक्ष मजबूत है तो किसी के जीवन का दूसरा पक्ष। जीवन की बहुत-सी बातें तो ऐसी हैं, जिन्हें हम जानते भी नहीं, फिर तुलना कैसी? जो दीख रहा है, वह बहुत थोड़ा होता है और उसे ही देखकर तुलना करना और परेशान रहना, जीवन की विविधता को नकारना है। हमें हर परिस्थिति में स्वयं को स्वीकारना है और जीवन के सकारात्मक पहलुओं को देखना है, तभी हम जीवन की बहुमूल्यता को समझ सकेंगे।

प्रसिद्ध जर्मन लेखक हरमन हेस्स के उपन्यास 'सिद्धार्थ' में नायक से जब यह पूछा जाता है कि वह जीवन में क्या कर सकता है? तो उसका उत्तर था—"मैं सोच सकता हूँ, मैं इंतजार कर सकता हूँ, मेरे पास संयम है।" हमें भी अपने जीवन के अभावों को दूर करने के लिए इन सूत्रों को अपनाना चाहिए अर्थात हमारे अंदर सोचने-समझने की, विचार करने की क्षमता होनी चाहिए और जो हम पाना चाहते हैं, उसके लिए इतना धैर्य होना चाहिए कि हम उसके लिए अनुकूल समय की प्रतीक्षा कर सकें और अंत में, यदि वह न मिले तो भी संयम रख सकें।

इस तरह अभावों को दूर किया जा सकता है, अपने नजरिए में बदलाव से, अपनी योग्यता व अपने श्रम से; लेकिन अभावों को लेकर परेशान रहना, इनके पूरा न होने पर दुःखी होना समस्या का हल नहीं है। सकारात्मक दृष्टि से देखा जाए तो अभावों को पूरा करने के कारण ही हम जीवन में कुछ करने के लिए आगे बढ़ते हैं और अपने हर संभव प्रयास से इन अभावों को दूर करना चाहते हैं।

'अभाव' शब्द ही अपने आप में नकारात्मक है, जिसके लगातार चिंतन से हीनता का जन्म होता है और व्यक्ति इसके आगे स्वयं को विवश समझने लगता है, इसलिए अभावों को दूर करना जरूरी है, लेकिन इसके लिए हर समय अपने अभावों को याद करने की जरूरत नहीं, बल्कि अपनी योग्यता, क्षमता को बढ़ाने व श्रम करने की जरूरत है और हमारे पास क्या-क्या है, यह देखने व जानने की जरूरत है। ऐसा करने से ही जीवन अभावों से मुक्त हो सकेगा और हम अपने जीवन में पूर्ण विकसित हो पाएँगे।

तुर्की और ईरान के मध्य युद्ध हुआ। युद्ध में तुर्की की सेना ने ईरान के सूफी संत फरीदुद्दीन को पकड़ लिया और उन्हें कारावास में डाल दिया। इस समाचार को सुनकर ईरान की जनता दुःखी हो गई और अपना क्षोभ व्यक्त करने जनसमूह ईरान के शाह से मिलने पहुँचा। उनकी फरियाद सुनकर ईरान के शाह ने तुर्की के सुल्तान को प्रस्ताव भेजा कि वे हमारा सारा राज्य ले लें, पर संत को छोड़ दें।

तुर्की का सुल्तान यह प्रस्ताव सुनकर घोर आश्चर्य में पड़ गया और उसने दूत के माध्यम से प्रश्न कराया कि जिस राज्य को हम लड़कर युद्ध में न जीत सके, उसे वे एक आदमी के बदले क्यों देने को तैयार हैं? ईरान के शाह ने कहा—"राज्य आते-जाते रहते हैं, पर संत अमर हैं। संत को खोकर मिला राज्य मूल्यहीन है, पर संत बहुमूल्य हैं।" यह सुनकर तुर्की के सुल्तान की आँखें खुल गईं। वह जान गया कि जिस देश में संतों का इतना आदर है, उसे जीत पाना संभव नहीं। उसने संत को आदरपूर्वक छोड़कर ईरान से संधि कर ली।

कैसे अपनाएँ अच्छी आदतें

आदतें हमारे जीवन को बहुत अधिक प्रभावित करती हैं और हमें अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचने में सहायक या बाधक बनती हैं। हमारी जीवनशैली, हमारी आदतों का पर्याय है। इसलिए हमारी आदतें जैसी हैं, वैसा करना बहुत सहज लगता है और आदतों के विपरीत कुछ करना असहज व कठिन लगता है। आदतों के विपरीत करने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। आदतें हमारे मन में बनी वे गहरी लकीरें हैं, जिनसे हमारी जीवन-ऊर्जा सहज प्रवाहित होती है। इन लकीरों को आसानी से मिटाया नहीं जा सकता, और आदतों के विपरीत इन लकीरों की तरह अन्य लकीरें बनाने में समय व श्रम लगता है।

हमारी जीवनशैली में यदि अच्छी आदतें हैं तो उन्नति की ओर हम लगातार बढ़ते जाते हैं और यदि गलत आदतें हैं तो हम पतन की ओर बढ़ने लगते हैं। गलत आदतें हमें बरबस गर्त में गिरने के लिए मजबूर करती हैं। इसलिए गलत आदतें मनुष्य जीवन को नष्ट कर देती हैं और इनसे बचने व सावधान रहने की अत्यंत आवश्यकता है।

गलत आदतें दो तरह से हमारे संपर्क में आती हैं— या तो हम ही इन आदतों को अपना लेते हैं या फिर बुरी संगत से हम इनके प्रभाव में आ जाते हैं। ऐसी बुरी आदतें, जो हमारे जीवन को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं, वे हैं— अस्त-व्यस्त रहना, समय पर कार्य न करना, देर से सोना व देर से जागना, गलत खान-पान अपनाना, नशीले पदार्थों का सेवन करना या इनकी लत होना, परिश्रम से बचना, कम सोना, अत्यधिक गुस्सा करना, बातचीत में गाली-गलौज करना, अभद्र व्यवहार करना आदि। इसके अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी आदतें हैं, जो अनजाने ही हमारे व्यवहार में आ जाती हैं और प्रकट होने लगती हैं।

सभी गलत आदतें हमारे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं और हमें लक्ष्य से भटकाती हैं। इसलिए हमें ही सजग रहकर इन गलत आदतों से अपना बचाव करना चाहिए। बचाव का एक ही तरीका है कि अच्छी आदतों को जीवन में अपनाया जाए और इसके लिए निरंतर परिश्रम किया जाए। निरंतरता ही वह माध्यम है, जिसके कारण हम अच्छी आदतों को अपने व्यक्तित्व का हिस्सा बना सकते हैं।

अच्छी आदतें न केवल बहुमूल्य होती हैं, बल्कि हमारे जीवन को भी मूल्यवान बना देती हैं। इसके विपरीत गलत आदतें सहज सुलभ होती हैं और जीवन को मूल्यहीन बना देती हैं। जिस तरह बेशकीमती हीरे की लोग कद्र करते हैं, उसका अधिक से अधिक मूल्य आँकते हैं, उसी तरह अच्छी आदतों को धारण करने वाले व्यक्ति महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। समाज के लोग उन्हें सम्मान देते हैं और अपने भावी जीवन के लिए वे स्वयं ही कोई न कोई मार्ग बना लेते हैं।

जीवन में जितनी अच्छी आदतें होती हैं, उतने ही अंशों में हम अपने जीवन का कायाकल्प करते हैं। अच्छी आदतें जहाँ हमारे स्वास्थ्य को सुधारती हैं और हमें हमेशा स्वस्थ बनाए रखती हैं, वहीं बुरी आदतें हमारे स्वास्थ्य को गिराती हैं और समय से पहले ही हमें बूढ़ा बना देती हैं। इसलिए इन आदतों में सुधार करने की जरूरत है।

आदतों का हमारे जीवन से बहुत गहरा रिश्ता होता है। आदतें बाह्य और आंतरिक भी होती हैं। बाह्य आदतों से दूसरों का परिचय हो सकता है, लेकिन आंतरिक आदतों से मात्र हमारा संपर्क व परिचय होता है। इन्हें हम ही जान सकते हैं व महसूस कर सकते हैं, दूसरा नहीं। फिर भी ये आदतें हमारे जीवन का आधार निर्मित करती हैं, जैसे—हमारे विचार करने की आदतें, हमारी रुचियाँ व पसंद, हमारी मनोवृत्तियाँ इत्यादि, ये सभी हमारी आंतरिक आदतों का परिणाम हैं।

हमारी बाहरी आदतों में कुछ आदतें बहुत पुरानी होती हैं, जिन्हें बदलना मुश्किल होता है, जैसे—लिखने की आदत, शब्दों का उच्चारण, चाल-चलन आदि आदतें ऐसी होती हैं, जो लंबे समय से हमारे साथ रही होती हैं। लेकिन कुछ आदतें ऐसी होती हैं, जो हमारे जीवन में नहीं थीं, लेकिन अब उनकी आदत पड़ गई है, ऐसी आदतें अपरिपक्व होती हैं, जिन्हें बदला जा सकता है।

आदतें चाहे बहुत पुरानी हों या नई, इन्हें अच्छी आदतों में बदलने के लिए हमें सदा प्रयास करते रहना चाहिए, लेकिन आदतों से पीछा छुड़ाना इतना आसान भी नहीं है। जैसे हम रिश्तों से बँधे होते हैं, उसी तरह इन आदतों की जकड़ में भी होते हैं। लाख चाहने के बाद भी ये छूटती नहीं हैं। लोग इन्हें छोड़ने के लिए संकल्प करते हैं, परंतु संकल्प तो टूट जाते हैं, लेकिन ये नहीं छूटतीं। यह प्रश्न उठता है कि आंतरिक बदलाव की प्रबल चाहत होने के बावजूद पुरानी आदतें संकल्प पर भारी कैसे पड़ जाती हैं? इसका कारण मनोवैज्ञानिक पीटर हाल ने अपने शोध के माध्यम से बताया कि हमारे व्यवहार का ९५ प्रतिशत हिस्सा स्वचालित है और आदतें उसी स्वचालित प्रक्रिया, का हिस्सा हैं। इसलिए उनमें बदलाव मुश्किल होता है। हमारे अवचेतन मन में इस स्वचालित प्रक्रिया यानी किसी आदत के रहते हुए कोई भी नई आदत तभी आकार ले पाती है, जब उसे लगातार दोहराया जाए। बिना अभ्यास के नई आदतें अवचेतन में स्थापित नहीं हो पातीं।

तंत्रिका विज्ञान की विशेषज्ञ प्रोफेसर एन ग्रेबिल रोजेनब्लिथ का इस बारे में कहना है कि हमारा तंत्रिका तंत्र ऐसा है कि नई आदतों को ग्रहण करने में जरा भी रुचि नहीं दिखाता, लेकिन एक बार यदि नई आदत स्वीकार कर ले, तो उसे यों ही छूटने भी नहीं देता। प्रसिद्ध विचारक अर्ल नाइटिंगेल का कहना है कि 'हम वैसे ही बन जाते हैं, जैसा कि हम ज्यादातर समय सोचते रहते हैं।' इनके कहने का अर्थ है कि आदतों को बदलने की कोशिश मात्र से बदलाव नहीं आ सकता। यह बदलाव तभी आ सकता है, जब सोचने के तरीके में बदलाव हो और इसे देख पाने की नई आदतें विकसित की जाएँ; क्योंकि हमारा मस्तिष्क अवचेतन में पहले से मौजूद स्वचालित व्यवहार की भाषा समझता है, इसलिए बेहतर यही है कि संकल्पों के टूटने से परेशान न हुआ जाए और दृढ़ संकल्प करते हुए स्वयं की आदतें सुधारी जाएँ।

परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने कहा ही है कि **'जो जैसा सोचता है और करता है, वह वैसा ही बन जाता है।'** इसीलिए पूज्य गुरुदेव ने आदतों को सुधारने के लिए छोटे-छोटे संकल्पों को लेने के लिए कहा। एकदम से बड़े संकल्प लेने और इनके टूटने पर मन चोटिल होता है और स्वयं को कमजोर महसूस करता है। छोटे-छोटे संकल्प यदि पूरे होते हैं तो मन में उत्साह बना रहता है और संकल्पशक्ति भी बढ़ती है। इसके अतिरिक्त आदतों को सुधारने के लिए दृढ़ मन:स्थिति भी चाहिए; क्योंकि दृढ़ मन:स्थिति से इन्हें आसानी से बदला जा सकता है। कमजोर मन:स्थिति में ये आदतें ही हमें अपनी गिरफ्त में ले लेती हैं। इसलिए यह जरूरी है कि हम अपनी आत्मसमीक्षा व आत्ममूल्यांकन समय-समय पर करते रहें और अच्छी आदतों को अपने व्यवहार में लाने के लिए सतत प्रयास करते रहें, तभी हम अपने जीवन को बदल सकेंगे।

इन दिनों ऐसे मणिमुक्तकों की तलाश हो रही है, जिनका सुगठित हार युग चेतना की महाशक्ति के गले में पहनाया जा सके। ऐसे सुसंस्कारियों की तलाश युग निमंत्रण पहुँचाकर की जा रही है, जो जीवित होंगे, करवट बदलकर उठ खड़े होंगे और संकटकाल में शौर्य प्रदर्शित करने वाले सेनापतियों की तरह अपने को विजयश्री वरण करने के अधिकारी के रूप में प्रस्तुत करेंगे। कृपण और कायर ही कर्त्तव्यों की पुकार सुनकर काँपते, घबराते और किसी कोटर में अपना मुँह छिपाने की विडंबना रचते हैं। एक दिन मरते तो वे भी हैं, पर खेद, पश्चात्ताप की कलंक-कालिमा सिर पर लादे हुए। महाविनाश की विभीषिकाएँ अपनी मौत मरेंगी। अरुणोदय अगले ही क्षण जाज्वल्यमान् दिवाकर की तरह उगेगा। यह संभावना सुनिश्चित है।

—परमपूज्य गुरुदेव

▶समूह साधना वर्ष◀

आदिशक्ति की लीलाकथा — ६२

प्रजापति ब्रह्मा ने किया माँ भगवती का आवाहन

आदिशक्ति की लीलाकथा का कथन-श्रवण, पठन-मनन मन के मैल को दूर करता है। मन में मैल की परतें चढ़ी हों, मन की मलिनता सघन हो तो जीवन में अनेकों विरोध-अवरोध, विघ्न-बाधाएँ, गतिरोध-उपद्रव खड़े हो जाते हैं। जिनके जीवन में इनमें से एक भी हो, उनकी पीड़ा-परेशानी असहनीय हो जाती है। यदि इनमें से कई एक साथ जीवन में प्रवेश कर जाएँ तो समूची जिंदगी अनायास ही नारकीय यातना बन जाती है। इसे दूर करने के लिए कई तरह के उपाय किए जाते हैं, अनेकों तरीके अपनाए जाते हैं। हालाँकि इनमें से किसी को कोई खास सफलता नहीं मिलती। इसका कारण बस इतना है कि अंतःकरण का बदलाव परिस्थितियों को बदलता है। अंतःकरण की चिंता किए बिना परिस्थितियों पर नियंत्रण करने की कोशिश, उस दरदनिवारक दवा की तरह साबित होती है, जिससे थोड़ी देर के लिए दरद में राहत जरूर मिलती है, पर मरज यथावत् बना रहता है।

आदिशक्ति की लीलाकथा की पिछली कड़ी में इस सच को स्पष्ट करने की कोशिश की गई थी। इसमें चर्चा की गई थी उस समय की, जब जगत के पालनहार क्षीरसागर में शेषशय्या पर शयन कर रहे थे। तभी उनके कर्ण के मैल से दो घोर राक्षस मधु व कैटभ उत्पन्न हुए। मधु व कैटभ का शाब्दिक अर्थ होता है मीठा और कड़ुआ। जीवन में मीठे व कड़ुए की अनुभूति राग व द्वेष से होती है। राग का अनुभव मीठा है; जबकि द्वेष का कड़ुआ। जबकि प्रकाश-पथ पर अवरोध, ये दोनों ही हैं। दोनों ही मैल के परिणाम हैं, मलिनता के उत्पाद हैं। इनमें से कोई कल्याणकारी नहीं है। राग बढ़ता है तो आसक्ति, मोह, लोभ जैसे न जाने कितने विकार अपने आप जन्म ले लेते हैं। यदि द्वेष बढ़ जाता है तो ईर्ष्या, वैमनस्य, वैर-क्रोध जैसी विकृतियाँ जीवन को घेर लेती हैं। ये दोनों ही अपनी-अपनी तरह से जीवन की सृजन चेतना को नष्ट करने की कोशिश करती हैं।

इसी कथाक्रम को अगले श्लोक-मंत्र में स्पष्ट किया गया है—

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः॥ १/१/६९॥

अर्थ—भगवान विष्णु के नाभिकमल में विराजमान प्रजापति ब्रह्मा ने जब उन भयानक असुरों को अपने पास आया और भगवान को सोया हुआ देखा, तब वे अपने हृदय में एकाग्र होकर भगवती योगनिद्रा को तुष्ट करने के लिए प्रार्थना करने लगे।

भक्त कवि का काव्यानुवाद—

हरि के नाभिकमल पर बैठे, ब्रह्मा उन असुरों को देख।
और जनार्दन को देखा सोते, भय से व्याकुल हुए विशेष॥

आदिशक्ति की लीलाकथा का यह श्लोक-मंत्र अपने में अनेकों प्रेरक भाव सँजोए है। सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा का आसन है कमल, जो भगवान श्रीहरि की नाभि से उपजा है। सृष्टि-सृजन बड़ा उलझनभरा कार्य है। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस में लिखा है—**'तप बल रचहिं प्रपंच विधाता'**—अर्थात ब्रह्मदेव तप के बल पर इस प्रपंच की रचना करते हैं। यहाँ सृष्टि को प्रपंच पर्याय से संबोधित किया गया है। जब प्रपंच में रहना हो, अथवा उसकी रचना करनी हो तो दो तत्त्व अनिवार्य हैं—(१) तप, (२) कमल की तरह निर्लेप रहने की सामर्थ्य। इन दोनों में एक भी कम पड़ा तो सहज ही मधु-कैटभ, यानी कि राग-द्वेष का आक्रमण होने लगता है, सृष्टि के सृजन में बाधा पड़ने लगती है। ऐसी स्थिति में एक ही उपाय है—भगवती महामाया का स्मरण व उनकी शरण।

संसार में रहकर सांसारिक कर्त्तव्यों का पालन तो उचित है, पर यहाँ किसी भी तरह की चाहत ठीक नहीं। राग-द्वेष घेर लें तो अस्तित्व पर संकट छाने लगता है। राग-द्वेष से जो भी घिरा, उसका जीवन सहज ही पीड़ा-परेशानी व पतन का पर्याय बन गया। इससे उबरना है तो उपाय एक ही है और वह है—राग-द्वेष से उबरना अर्थात मन के मैल, मन की मलिनता से पीछा छुड़ाना।

पुराणों में इस सत्य को स्पष्ट करने वाला एक बड़ा मार्मिक कथा-प्रसंग है। यह कथा है एक दरिद्र ब्राह्मण

की। उसके पास दरिद्रता के कारण कई संकट थे। धनहीन होने के कारण उसका कोई मित्र न था। हाँ, अनायास शत्रुता करने वालों की तथा उसे अपमानित करने वालों की संख्या पर्याप्त थी। द्वेष के भँवर में, राग की चाहत में वह उलझा था। ऐसे में उसने सोचा यदि धन मिल जाए तो मेरे सभी संकट स्वत: समाप्त हो जाएँगे, पर धन मिले कैसे? वह सकाम यज्ञों की विधि जानता था, पर धन के बिना यज्ञ कैसे संभव और संपन्न हो। ऐसी स्थिति में उसे सूझा कि वह किसी देवता की आराधना करेगा, पर किसकी? इस प्रश्न के उत्तर में उसने सोचा—"जिस देवता की आराधना किसी ने न की हो, वह उसी की आराधना करेगा।"

इसी चिंतन में उसे आकाश में कुंडधार मेघ के देवता का दर्शन हुआ। ब्राह्मण ने विचार किया—"मनुष्य ने कभी इनकी पूजा न की होगी। ये बृहदाकार मेघ देवता देवलोक के समीप रहते हैं, ये अवश्य मुझे धन देंगे।" बस, बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उसने कुंडधार मेघ की पूजा प्रारंभ कर दी। ब्राह्मण की पूजा से कुंडधार को प्रसन्नता तो बहुत हुई, पर उसे असमंजस भी बहुत हुआ; क्योंकि वह स्वयं तो जल के अतिरिक्त किसी को कुछ दे नहीं सकता था। अपनी इस परेशानी से उबरने के लिए उसने प्रकृति की अधिष्ठात्री भगवती जगन्माता की स्तुति करना प्रारंभ किया। कुंडधार मेघ की भक्ति से प्रसन्न होकर भवानी प्रकट होकर बोलीं—"बोलो वत्स! तुम क्या चाहते हो?" इस पर कुंडधार ने कहा—"माता! यदि मुझ पर प्रसन्न हैं तो उपासक ब्राह्मण का कल्याण करें।" उसकी यह बात सुनकर भगवती मुस्कराकर बोलीं—"वत्स कुंडधार! तुम्हारा यह भक्त तो धन की कामना करता है। तुम कहो तो मैं इसकी कामना इसी क्षण पूर्ण कर दूँ।"

जगन्माता की यह बात सुनकर कुंडधार मेघ ने कहा—"हे माँ! मैं इसके कल्याण के लिए आपसे प्रार्थना करता हूँ, धन के लिए नहीं।" इसके उत्तर में जगन्माता बोलीं—"अच्छी बात है पुत्र!" इतना कहकर भगवती अदृश्य हो गईं। उसी समय ब्राह्मण ने स्वप्न में श्मशान में जलती चिताएँ देखीं। संसार की नश्वरता के अनेकों दृश्य देखे। यह देखकर उसके हृदय में राग-द्वेष की मलिनता मिटी और वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा—"मैंने व्यर्थ राग-द्वेष से अपने मन को मलिन किया। अनेकों वर्षों तक कुंडधार मेघ की आराधना की, लेकिन किसी ने मुझ पर उपकार नहीं किया। इस प्रकार व्यर्थ जीवन व्यतीत करने से क्या लाभ? अब मुझे तप करके अपने मन को निर्मल करना चाहिए।"

यह विचार करते हुए उसने तप-साधना प्रारंभ की। दीघकाल तक तपस्या करने के कारण उसे अद्‌भुत सिद्धि प्राप्त हुई। वह अब अपने आप पर आश्चर्य करते हुए विचार करने लगा—"कहाँ तो मैं धन के लिए भटकता फिरता था। इसी फेर में मैंने वर्षों तक कुंडधार की आराधना की। उसका कोई परिणाम न निकला और अब मैं स्वयं ऐसा हो गया हूँ कि किसी को यदि धनी होने का आशीर्वाद दे दूँ तो वह निश्चित ही धनी हो जाएगा।"

इस विचार से ब्राह्मण का उत्साह बढ़ गया। तपस्या में उसकी श्रद्धा बढ़ गई। वह उत्साहपूर्वक अपने तप में लगा रहा। एक दिन उसके पास वही कुंडधार मेघ आया। उसने कहा—"हे ब्रह्मन्! तपस्या के प्रभाव से अब आपको दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गई है। अब आप धनी पुरुषों व राजाओं की गति देख सकते हैं।" ब्राह्मण ने देखा कि धन के कारण लोग धर्म से विरत होकर भोगों की लालसा में अनेक पाप कर रहे हैं। इसी तरह सत्ता के मद में चूर लोग भी तरह-तरह के पापकर्म में लगे हैं। धन व सत्ता के मद में चूर लोगों को ब्राह्मण ने घोर नरकों में गिरते हुए देखा।

कुंडधार मेघ बोला—"भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करके यदि आप मुझसे धन पाते और राग-द्वेष की मलिनता को और भी बढ़ाकर नरकगामी होते तो मुझसे आपको क्या लाभ होता? इसलिए मैंने आदिशक्ति जगन्माता से आपके परम कल्याण की याचना की। उन्हीं की कृपा से आपको निर्मल मति प्राप्त हुई और आप तप-साधना में लग सके। अब तक के तप ने आपको निर्मल बना दिया है। इसलिए हे ब्राह्मण! अब आप स्वयं को उन सर्वेश्वरी की भक्ति में समर्पित करें। वे निश्चित ही आपका परम कल्याण करेंगी।" कुंडधार मेघ की यह बात सुनकर ब्राह्मण ने मेघ के प्रति कृतज्ञता प्रकट की, फिर उसने उसी क्षण से स्वयं को जगन्माता की भक्ति में समर्पित कर दिया। माता की कृपा से उसे शाश्वत आनंद व परम कल्याण प्राप्त हुआ।

जगन्माता की कृपा व उनकी लीलाकथा के कथन व श्रवण के प्रभाव से निश्चित ही जीवन मधु-कैटभ के जाल से मुक्त हो जाता है। इस श्लोक-मंत्र में निहित इन दार्शनिक-आध्यात्मिक भावों के साथ इसका अपना विशेष साधना-विधान है जो निम्न है—

॥ साधना-विधान ॥

विनियोगः —ॐ अस्य श्री 'दृष्ट्वा तावसुरौ' इति सप्तशती एकोनसप्तति मन्त्रस्य श्रीदेवल ऋषिः, श्रीमहालक्ष्मीदेवता, श्रीं बीजं, शाकिनी शक्तिः, सुन्दरी महाविद्या, सत्त्व गुणः, चक्षुः ज्ञानेन्द्रियं, मृदु रसं, कर कर्मेन्द्रियं, मृदु स्वरं, आकाश तत्त्वं, परा शान्तिः कला, ऐं उत्कीलनं, प्रभाविनी मुद्रा, ममज्ञानभक्तिवैराग्य-पूर्वकं क्षेमस्थैर्यायुरारोग्याभिवृद्ध्यर्थं श्रीआदिशक्ति वेदमाता गायत्री रूपेण श्रीजगदम्बा योगमाया भगवती दुर्गा प्रसाद सिद्ध्यर्थं च नमोयुत प्रणव वाग्बीज-स्वबीज-लोम-विलोम पुटितोक्त एकोनसप्तति मंत्र जपे विनियोगः।

॥ न्यासः ॥

	करन्यासः	षडङ्ग न्यासः
ॐ ऐं श्रीं	अंगुष्ठाभ्यां नमः	हृदयाय नमः
नमो नमः	तर्जनीभ्यां नमः	शिरसे स्वाहा
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्
प्रसुप्तं च जनार्दनं	अनामिकाभ्यां नमः	कवचाय हुम्
तुष्टाव योगनिद्रां तां	कनिष्ठिकाभ्यां नमः	नेत्रत्रयाय वौषट्
एकाग्रहृदयस्थितः	करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः	अस्त्राय फट्

॥ ध्यानम् ॥

अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभदर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

॥ मंत्र ॥

ॐ ऐं श्रीं नमः
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ, प्रसुप्तं च जनार्दनम्।
तुष्टाव योगनिद्रां तां, एकाग्रहृदयस्थितः॥
नमों श्रीं ऐं ॐ॥ ६९॥

१,००० जपात् सिद्धिः —पायस-घृत-तिलैः होमः।

गायत्री महामंत्र जप—१०,०००-गायत्री विधानेन दशांश होमः।

१० माला गायत्री, १ माला सप्तशती मंत्र। इस तरह से १० दिन का विधान। तदुपरांत प्रत्येक का दशांश हवन।

आध्यात्मिक फलश्रुति—जगन्माता की कृपा प्राप्ति।

लौकिक फलश्रुति—योगक्षेम का समाधान।

गायत्री महामंत्र के साथ इस सप्तशती मंत्र की साधना के प्रभाव साधक की चेतना पर अनिवार्य रूप से पड़ते हैं। साधना की प्रगाढ़ता, परिपक्वता व निरंतरता के अनुरूप साधक के मन के मैल का, मन की मलिनता का स्वयं ही शमन होने लगता है और साथ ही मिटते हैं—जीवन के अवरोध, प्रतिरोध। मुश्किलें आसान होने लगती हैं। अंतर्मन से स्वतः ही वैर-वैमनस्य, आसक्ति, मोह व लालसाएँ दूर होने लगती हैं। निर्मल मन साधक का सहज स्वभाव बनने लगता है। कटुता, क्लेश, कलह, कलुष अपने आप ही जीवन से दूर होने लगते हैं। निर्भार होने लगता है—अपना मन व अपना जीवन। महामाया की कृपा की अनुभूति हर पल होने लगती है। लगने लगता है कि माता ने स्वयं हाथ थाम लिया है। उनकी कृपा से सांसारिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ स्वतः पूरी होने लगती हैं।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से शिष्यों ने पूछा—"अध्यात्म-पथ पर किस प्रकार के व्यक्ति चल पाते हैं?" वे बोले—"अध्यात्म-पथ पर चार प्रकार के व्यक्ति आगे बढ़ते हैं। पहला है, प्रवर्तक—वह अध्यात्म के विषय में थोड़ा पढ़ता, थोड़ा सुनता है। दूसरा है, साधक—वह परमात्मा को पुकारता, उनका ध्यान-चिंतन और नाम-गुण-कीर्तन करता है। तीसरा है, सिद्ध—जिसे हृदय में परमात्मा का अनुभव हुआ है, उनके दर्शन हुए हैं। चौथा है, सिद्धों का सिद्ध—जो सदा परमात्मभाव में ही रहता है, जैसे—चैतन्य महाप्रभु। भावनाएँ प्रगाढ़ होती हैं, तो श्रद्धा मजबूत होती है और उसी के अनुरूप मनुष्य अध्यात्म-पथ पर आगे बढ़ता चलता है।"

डर से डरें नहीं, उसे दूर भगाएँ

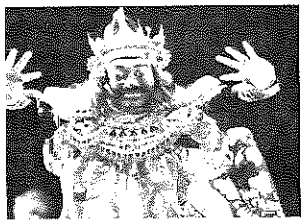

जीवन की अनजानी, अनदेखी, अँधेरी राहों में यह डर सदैव ही हमें डराता रहता है कि 'पता नहीं, क्या होगा'। मन में भय बना रहता है और वह हमें भयभीत किए रहता है। भय एक तरह का भ्रम होता है, लेकिन यह भयानक प्रतीत होता है, जिसका सामना करने से भी हम घबराते हैं। दुनिया में ऐसा कोई नहीं है, जिसका डर से सामना न हुआ हो। कोई भी नया काम शुरू करने से पहले डर सामने होता है कि कहीं कोई विफलता न मिले, कार्य का जो निर्णय लिया गया है, वह गलत तो नहीं और इसके अतिरिक्त लोगों से मिलने वाली प्रतिक्रिया का भी डर होता है।

वास्तव में डर कोई समस्या नहीं है। समस्या है—केवल साहस के न होने में। थोड़ा डर होना भी जरूरी है, ताकि हम अपने कार्यों में जुटे रहें, लेकिन अधिक डर किसी भी तरह फायदेमंद नहीं है। इसके होने मात्र से व्यक्ति का आधा बल क्षीण हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में वह सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं कर सकता। 'शेखर-एक जीवनी' के रचनाकार अज्ञेय ने डर के बारे में लिखा है कि 'डर डरने से होता है। इस पर यदि जीत हासिल करनी है तो साहस चाहिए।' वास्तव में डर अपनी सीमा तभी विस्तृत करता है, जब हम साहसहीन होते हैं।

साहस अपने आप में एक ऐसी शक्ति है, जिसके समक्ष डर अपना अस्तित्व गँवा देता है; क्योंकि साहस सबसे पहले यथार्थ की समझ की माँग करता है, फिर सोच-विचार कर कदम उठाने और अपने उद्देश्य पर जमे रहने के लिए प्रेरित करता है। साहसपूर्ण जीवन जीना एक सीढ़ी भर नहीं है, बल्कि जीवन का अंतहीन सिलसिला है। शोध भी इस बात की पुष्टि करता है कि साहस के समक्ष डर ज्यादा देर तक टिक नहीं सकता। साहस और सकारात्मकता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सकारात्मकता नैतिक साहस को बल देती है और साहस सकारात्मकता को। दुनिया में जितने भी बदलाव हुए हैं, साहस उनके आधार में रहा है।

साहस किस तरह डर को पराजित करता है, इसका एक उदाहरण बुद्ध के जीवन का है। कुरु जनपद की रानी बुद्ध को पसंद नहीं करती थी। वह यह भी नहीं चाहती थी कि बुद्ध कभी उसके राज्य की सीमा में प्रवेश करें, लेकिन बुद्ध एक दिन उसके राज्य में प्रवेश कर गए। जब उसे पता चला कि बुद्ध उसके इलाके में आ रहे हैं तो उसने नौकरों-चाकरों को आज्ञा दी कि वे बुद्ध और उनके अनुयायियों का विभिन्न प्रकार से अनादर करें। बुद्ध के प्रवेश करते ही लोगों ने उन्हें उलटा-सीधा कहना शुरू किया। कोई उन्हें देखकर हँसने लगा तो कोई गालियाँ बकने लगा, पर बुद्ध शांत रहे। लेकिन उनके शिष्य घबराए। उनके लिए यह सब बड़ा ही विचित्र अनुभव था। आज तक उन्हें हर जगह स्नेह और सत्कार ही मिला था। ऐसा अनपेक्षित व्यवहार उनके साथ अभी तक किसी ने नहीं किया था। शिष्यगण इसका रहस्य नहीं समझ पा रहे थे कि यहाँ उनके साथ ऐसा क्यों हो रहा है?

आखिर बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद से यह सब सहन न हुआ और उसने बुद्ध से कहा—"भंते! हमें यहाँ से चले जाना चाहिए।" बुद्ध ने पूछा—"कहाँ जाना चाहते हो?" आनंद ने उत्तर दिया—"किसी दूसरे क्षेत्र में, जहाँ कोई हमें अपशब्द न कहे।" इस पर बुद्ध बोले—"वहाँ भी यदि कोई दुर्व्यवहार करे, तो?" इस पर आनंद ने जवाब दिया—"किसी और स्थान को चले जाएँगे।" बुद्ध ने कहा—"तो हम कब तक भागते रहेंगे? जहाँ गलत व्यवहार हो रहा हो और उससे मन भयभीत व परेशान हो, उस स्थान को तब तक नहीं छोड़ना चाहिए, जब तक वहाँ सामान्य स्थिति न आ जाए। क्या तुमने यह नहीं देखा कि मेरा व्यवहार संग्राम में बढ़ते हुए हाथी की तरह होता है। जिस प्रकार हाथी चारों ओर के तीरों को सहता रहता है, उसी तरह हमें दुष्ट पुरुषों के अपशब्दों को सहन करते रहना चाहिए, उनसे भयभीत नहीं होना चाहिए। देखना, एक दिन वे थक जाएँगे और स्वयं उन्हें लगेगा कि वे गलत कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य उन्हें सही रास्ते पर लाना है, उनसे भागते रहना नहीं; क्योंकि अगर

हम भागे तो उनमें कभी सुधार नहीं होगा और जीवनभर हम इन परिस्थितियों से भागते ही रहेंगे, इसलिए साहस के साथ इन परिस्थितियों में आगे बढ़ना चाहिए।'' भगवान बुद्ध के इन शब्दों का हमें सदा ध्यान रखना चाहिए।

हर व्यक्ति के मन में किसी न किसी चीज का डर होता है और वह समय पर सामने भी आ जाता है। इस बारे में अमेरिका के मशहूर एन्जाइटी एंड फोबिया ट्रीटमेंट सेंटर के डायरेक्टर डॉ० फ्रेडरिक न्यूमैन का कहना है—''डर अपनी जगह है, लेकिन उस डर को निकाला जा सकता है। बस, व्यक्ति को यह समझाने की जरूरत है कि देखो, यह काम इतने सारे लोग इतनी आसानी से कर रहे हैं।'' डर यानी फोबिया किसे नहीं होता? लेकिन डर कोई ऐसी चीज नहीं, जिससे उबरा न जा सके। यह सच है कि हमें डर लगता है, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि उस डर पर काबू पाया जा सकता है। यह जरूर है कि उसके लिए काफी मशक्कत करनी पड़ती है। इसलिए डर से और डरने की जरूरत नहीं है, उससे थोड़ा-सा भिड़ने की जरूरत है।

इसके लिए यह जरूरी है कि डर पैदा करने वाली जगह या माहौल में तब तक बार-बार जाया जाए, जब तक डर पूरी तरह से निकल न जाए। यह कार्य अपनी इच्छाशक्ति से किया जा सकता है या अपने किसी भरोसेमंद साथी की मदद से, लेकिन डर को मन से निकालने के लिए सबसे पहले हमें यह तय करना होगा कि हमें डर से छुटकारा पाना है। यह तो नहीं कह सकते कि डर होता ही नहीं। डर जरूर होता है, लेकिन वह सबसे अधिक हमारी कल्पनाओं में बसा होता है। डर से संबंधित हम विभिन्न तरह की कल्पनाएँ मन में कर लेते हैं और हम अपने डर को बढ़ा लेते हैं; जबकि वास्तव में इतना कुछ नहीं होता, जिससे डरा जाए।

मनोचिकित्सकों के अनुसार—इनसान डरता तब है, जब वह अपनी भावनाओं के बारे में स्पष्ट नहीं होता। मूल रूप से हम डरते तब हैं, जब हम कुछ चाहते हैं, पर उसे हासिल नहीं कर सकते या हमारे पास कुछ है और हम उसे खोना नहीं चाहते। व्यावहारिक रूप से यदि देखा जाए तो जब हम किसी से कुछ चाहते हैं तो सीधा यह कहने के बजाय कि मुझे यह चीज कैसे मिलेगी, हमें यह कहना चाहिए कि मैं ऐसा क्या करूँ, जिससे मुझे यह चीज प्राप्त हो? ऐसा करने से हम अपनी लेने वाली मानसिकता से निकल कर देने की मानसिकता में आ जाते हैं और जो हम चाहते हैं, वह अपनी सामर्थ्य व कार्य के अनुसार प्राप्त करते हैं। इसलिए यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि जीवन की किसी भी स्थिति से निपटने के लिए निडर होकर ही हम उसके समाधान के बारे में अच्छी तरह सोच सकते हैं। इसलिए डर के भ्रम से मन को बाहर निकालना चाहिए और वस्तुस्थिति के प्रति स्पष्ट रहना चाहिए।

डर हमारे जीवन में, हमारे अभिन्न अंग की तरह घुला-मिला है। हमारे शरीर का सुरक्षा तंत्र स्वयं हमें डरने पर मजबूर कर देता है और डर के समय हमारा पूरा अस्तित्व काँपता है। कोई कितना भी वीर क्यों न हो, जीवन में कभी-न-कभी उसका सामना डर से जरूर होता है। आमतौर पर हम डर को जितनी बड़ी चुनौती समझते हैं, वैसा कुछ होता नहीं है; क्योंकि इसकी ज्यादातर परिस्थितियाँ हम स्वयं निर्मित करते हैं। इसलिए निर्भय होने की सबसे सहज विधि है—हर परिस्थिति का तटस्थता के साथ सामना करना, मन में साहस बनाए रखना और परिस्थितियों के प्रति मन में स्पष्ट रहना। जितना हम मन को भ्रम से दूर रखेंगे, उतना ही भय से दूर रहेंगे।

एक विचारक से कुछ विद्यार्थियों ने प्रश्न किया—''प्रतिभा क्या है?'' विचारक ने उत्तर दिया—''प्रतिभा एक दैवीय स्तर की विद्युत चेतना है, जो मनुष्य के व्यक्तित्व और कृतित्व में असाधारण स्तर की उत्कृष्टता भर देती है। उसी के आधार पर अतिरिक्त सफलताएँ आश्चर्यजनक मात्रा में उपलब्ध की जाती हैं। प्रतिभाशाली अपने लिए असाधारण श्रेय और सम्मान तथा दूसरों को सही मार्गदर्शन दे पाने में सक्षम हो पाते हैं।''

व्यक्तित्व का आभूषण है विनम्रता

विनम्रता मनुष्य के व्यक्तित्व का आभूषण है। इसके माध्यम से हमारा व्यक्तित्व खूबसूरत बनता है; क्योंकि विनम्र होकर ही हम पात्रता अर्जित कर सकते हैं। विनम्र होकर हम ग्रहण करना सीखते हैं और विनम्रता के कारण ही हम दूसरों से जुड़ पाते हैं। भारतीय संस्कृति में इसी विनम्रता को व्यक्त करने के लिए प्रणाम व अभिवादन करने की परंपरा है। बड़ों के समक्ष झुककर आशीर्वाद लेने की प्रथा है। हमारे जीवन में विनम्रता बनी रहे, इसलिए प्रार्थना, स्तुतियाँ आदि की जाती हैं, दूसरों की सेवा-सहायता व दान किया जाता है, इन सब से हमारे मन का अहंकार गलता है, मन धुलता है और हम अधिक विनम्र व कृतज्ञ बनते हैं।

हमारे धर्मग्रंथों का एक मूलमंत्र है—जो नम्र होकर झुकते हैं, वही ऊपर उठते हैं। विनम्रता न केवल हमारे व्यक्तित्व में निखार लाती है, बल्कि कई बार सफलता का कारण भी बनती है। विनम्रता के कारण जो सम्मान मिलता है, उसका एक अलग महत्त्व है। मन की कोमलता और व्यवहार में विनम्रता एक बड़ी शक्ति है। कोमलता सदा जीवित रहती है; जबकि कठोरता का जल्दी ही विनाश हो जाता है। तलवार कठोर से कठोर पदार्थ को काट देती है, लेकिन कई कठोर पदार्थों को काटने की ताकत उसमें नहीं होती।

महाभारत युद्ध के बाद धर्मराज युधिष्ठिर भीष्म पितामह के पास गए, वे बाणों की शय्या पर भूमि में पड़े थे। युधिष्ठिर ने विनम्रतापूर्वक उनसे धर्मोपदेश देने का निवेदन किया। भीष्म पितामह ने कहा कि नदी समुद्र तक पहुँचती है तो अपने साथ पानी के अतिरिक्त बड़े-बड़े लंबे पेड़ साथ ले आती है। एक दिन समुद्र ने नदी से पूछा कि तुम पेड़ों को तो अपने प्रवाह में ले आती हो, परंतु कोमल बेलों और नाजुक पौधों को क्यों नहीं लाती हो? नदी बोली कि जब-जब पानी का बहाव बढ़ता है, तब बेलें झुक जाती हैं और झुककर पानी को रास्ता दे देती हैं, इसलिए वे बच जाती हैं; जबकि पेड़ तनकर खड़े रहते हैं और इसलिए अपना अस्तित्व खो बैठते हैं। भीष्म ने कहा कि युधिष्ठिर ठीक वैसे ही, जो जीवन में विनम्र रहते हैं, उनका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होता।

यह भी अक्सर देखा गया है कि कई लोग अपने विशेष कार्य में माहिर होते हैं, लेकिन विनम्रता के अभाव में घर या कार्यालय में सदैव परेशानी का शिकार होते हैं। विनम्रता कायरता नहीं है। यह व्यक्ति को शांति, सहनशीलता, शक्ति और ऊर्जा प्रदान करती है। मनुष्य यदि विनम्रता से जीवन जीना सीख ले तो अनेक परेशानियाँ देखते ही देखते समाप्त हो जाती हैं। इनके लिए किसी विशेष उपाय की आवश्यकता नहीं है, बल्कि थोड़ा-सा व्यवहार में बदलाव लाने मात्र से यह संभव हो जाता है। विनम्र व्यक्ति के सामने कठोर हृदय वाले व्यक्ति को भी झुकना ही पड़ता है। विनम्रता से हम छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखकर अपने जीवन को खुशहाल बना सकते हैं। जो विनम्र होते हैं, वे हर जगह सम्मान पाते हैं और दूसरों को जोड़ने का कार्य करते हैं।

विनम्रता के वास्तविक अर्थ को समझाने वाली एक कथा है—एक बार बाबा फरीद से मिलने के लिए एक राजा आया। वह बड़ा अहंकारी था। वह बाबा के लिए उपहारस्वरूप एक नायाब तलवार लेकर आया। उसने बाबा से कहा—"यह भेंट आपके लिए है।" भेंट देखकर बाबा फरीद बोले—"राजन्! मैं शुक्रगुजार हूँ कि तुम मेरे लिए बेशकीमती तलवार लेकर आए, लेकिन यह मेरे किसी काम की नहीं। मुझे कुछ देना ही चाहते हो तो सुई के साथ विनम्रता का उपहार दो। वह मेरे लिए ऐसी सौ तलवारों से भी अधिक कीमती होगा।"

राजा को बाबा से ऐसे जवाब की उम्मीद नहीं थी। वह बाबा की बात सुनकर दंग रह गया। वह बोला—"बाबा! सुई और विनम्रता ऐसी सौ तलवारों का मुकाबला कैसे कर सकती हैं?" बाबा बोले—"तलवार लोगों को मारने-काटने का काम करती है; जबकि सुई सिलने का काम करती है। एक बेशकीमती तलवार सिर्फ काटने का काम कर सकती है; जबकि एक छोटी-सी सुई चीजों को जोड़ती है। तोड़ना आसान है और जोड़ना

कठिन। इसी तरह विनम्रता से व्यक्ति उन सभी को जीत लेता है, जिन्हें वह अहंकारवश नहीं जीत सकता। विनम्रता और प्रेम के आगे सब पराजित हो जाते हैं। अब तुम्हीं बताओ, ऐसे में क्या ज्यादा कीमती है? तलवार एवं अहंकार या सुई और विनम्रता।''

राजा कुछ देर तक उनकी बात समझने की कोशिश करने लगा। थोड़ी देर सोचने के बाद वह बाबा का संकेत समझ गया और उनके चरणों में अपना सिर रखकर बोला—''बाबा! आज आपने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी है। आज से मैं जोड़ने का काम करूँगा और विनम्रता से अपनी प्रजा की सेवा करूँगा।'' इसके बाद उसने वह तलवार फेंक दी और विनम्रता को अपने जीवन में अपना लिया। कुछ ही समय में वह राजा, जो अपने क्रूर स्वभाव के कारण जाना जाता था, वह अपने विनम्र स्वभाव के कारण प्रसिद्ध हो गया।

इस तरह विनम्रता व्यक्ति के अंदर सत्पात्रता विकसित करती है। विनम्र व्यक्ति ही दूसरों के समक्ष झुक सकता है और दूसरों की भावनाओं का सम्मान कर सकता है। विनम्र व्यक्ति संवेदनशील होता है, जिसे दूसरों की कष्ट-पीड़ा महसूस होती है और जिसे दूर करने के लिए वह सेवा-सहायता के कार्य में निरत होता है। अहंकारी व्यक्ति न किसी की सेवा-सहायता कर सकता और न ही दूसरों की पीड़ा को महसूस कर सकता। इसलिए पात्रता अर्जित करने के लिए सबसे पहले अपने अहंकार को त्यागना पड़ता है और विनम्र बनना होता है। विनम्र बनकर व्यक्ति सहनशील बनता है और जीवन की ऊबड़-खाबड़ परिस्थितियों से सामंजस्य बिठा पाता है। इस तरह विनम्र होकर ही व्यक्ति सही अर्थों में बड़ा बनता है और अपने जीवन को ऊँचा उठा पाता है। हमें भी जीवन में विनम्रता को ही स्थान देना चाहिए, अहंकार को नहीं। ❀

महर्षि कणाद एक अपरिग्रही तपस्वी थे। उनकी दुर्धर्ष तपस्या के कारण समस्त भारतवर्ष में उनकी ख्याति थी। किसानों के खेत जोत लेने के बाद जो अन्न के दाने भूमि पर शेष रह जाते थे, उन्हीं को खाकर वे अपना जीवन व्यतीत करते थे। अन्न के कणों पर जीवित रहने के कारण उनका नाम 'कणाद' पड़ा था। उस राज्य के राजा को जब उनके इस महाव्रत का पता चला तो वह उनसे मिलने पहुँचा। राजा के पास अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ थीं, उसने वे सब महर्षि कणाद के चरणों में रख दीं। महर्षि बोले—''राजन्! ये सब ले जाओ। मेरे पास परमात्मा का दिया सब कुछ है, ये सब उन्हें दो, जिनके पास इनकी कमी हो।''

राजा यह सुनकर बड़ा आश्चर्यचकित हुआ और उसने लौटकर यह बात अपनी पत्नी को बताई। राजा की पत्नी विदुषी महिला थी, वह राजा से बोली—''महाराज! आज आपसे भूल हो गई। ऐसे महापुरुष के पास देने नहीं, लेने जाया जाता है। जिसे संसार की सांसारिकता से कोई मतलब नहीं, वही सच्चा ज्ञान देने का अधिकारी हो सकता है।'' अब राजा को अपनी भूल का भान हुआ। वह रानी के साथ महर्षि के पास ज्ञानार्जन के भाव से पहुँचा। महर्षि कणाद बोले—''राजन्! सच्चा वैभव सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति से नहीं, आत्मसाक्षात्कार से आता है। उसे प्राप्त करने के बाद अन्य कोई उपक्रम मनुष्य के लिए शेष नहीं रह जाता।'' महर्षि की बात सुनकर राजा और रानी का जीवन बदल गया।

अध्यात्म पथ के पथिक

सुदूर गाँव के बाहर एक कुटिया थी। कुटिया के बाहर एक बड़ा-सा पीपल का पेड़ था। पेड़ के चारों ओर मिट्टी का चबूतरा बना हुआ था। इसकी छाँह तले शिवलिंग स्थापित था। यह सब चारों ओर से प्राकृतिक ढंग से बेड़े से घिरा हुआ था। पास में एक छोटी-सी नदी बहती थी, जिसकी कल-कल की आवाज इस प्राकृतिक आश्रम को गुंजायमान करती रहती थी। हर मौसम प्रकृति अपनी छटाओं से आश्रम को सौंदर्य से अभिमंडित कर देती थी। पास में झुरमुटनुमा एक जंगल था। यहाँ पर लोग कम आते थे और यहाँ पर केवल एक गुरु एवं एक शिष्य रहते थे। शिष्य गुरु की सेवा में निमग्न रहते थे। गुरु बहुत कम निकलते थे। वे अपनी कुटिया के आसन पर प्राय: समाधिस्थ रहते थे।

आज गुरु अमृतासन अपनी समाधि से बाहर निकले थे। उनका चेहरा दिव्यता से दमक रहा था। आँखों में अनोखी एवं अद्‌भुत चमक थी। चेहरे के आस-पास उनकी दिव्यता के आभामंडल को शिष्य अन्वित सघनता से अनुभव कर पाते थे; क्योंकि गुरुकृपा से अन्वित साधना के उच्च आयामों में प्रतिष्ठित हो चुके थे, पर उनका बालसुलभ व्यवहार उनकी सिद्धि की विशेषताओं को आच्छादित किए रहता था। या यों कहें कि गुरु अपने शिष्य को सामान्य जीवन जीने के लिए कह रहे थे, ताकि उनकी अंतर्यात्रा में कोई विघ्न-बाधा न आ सके। अन्वित की चेतनात्मक स्थिति अत्यंत उन्नत थी। इसी बीच स्वामी अमृतासन ने कहा—''वत्स! आज तुम्हारा मित्र आशीष आने वाला है, कोई सूचना के बिना।''

अन्वित ने कहा—''हाँ, गुरुदेव! उसके आगमन हेतु उचित व्यवस्था करता हूँ।'' इतना कहने के बाद वे आशीष के भोजन आदि की व्यवस्था करने में जुट गए। अन्वित पाक-कला में निपुण एवं पारंगत थे और यह भी उन्हें गुरुकृपा से प्राप्त थी। जब अन्वित एवं आशीष यहाँ अध्ययन करते थे तो स्वामी जी उनको अपने हाथों से स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं सात्त्विक भोजन कराते थे। वे स्वयं व्रत-उपवास करते थे, परंतु दोनों को अच्छे से भोजन कराते थे। अध्ययन के उपरांत आशीष की इच्छा संसार की ओर लौटने की थी। वे लौटे और संसार का धन, मान, सम्मान, पद, प्रतिष्ठा अर्जित की। यह सब उन्होंने अपनी ईमानदारी और समझदारी से किया था; क्योंकि उनके अंदर उनके गुरु के आरोपित संस्कार प्रचुर मात्रा में थे, परंतु इस सबके बावजूद वे एक चीज को भूल न सके।

आशीष अपने मित्र अन्वित के प्रति ईर्ष्या करते थे और उनको लगता था कि वे सभी क्षेत्र में उनसे बेहतर हैं। अन्वित के शांत एवं सरल स्वभाव को वे मूर्खता एवं नादानी समझते थे। वे समझते थे कि इन्हीं कारणों से वे गुरु के पास ठहर गए और संसार में गति न कर सके। उनकी इस बात से गुरु एवं शिष्य, दोनों परिचित थे। आज आशीष गुरु के आश्रम आए थे। अन्वित ने उनको भोजन कराया। भोजन के स्वाद से उन्हें उनका बचपन याद आ गया। वे भावविभोर हो उठे, परंतु अहंकार की रेखा उनके अंदर फिर से जाग उठी और उन्होंने कहा—''अन्वित! मेरे भाई! तुमने यहाँ रहकर अपने जीवन को व्यर्थ कर दिया। तुमने यहाँ रहकर गुरु की सेवा की, यह तो अच्छी बात है, परंतु तुमने अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए क्या किया? कौन-सी उपलब्धि प्राप्त कर ली यहाँ रहकर? मुझे देखो, आज मेरे पास सब कुछ है।''

आशीष की इन बातों से अहंकार की गंध आ रही थी और उस सात्त्विक वातावरण को प्रदूषित कर रही थी। उसने आगे कहा—''देख! मैं अपनी मेहनत, लगन और ईमानदारी से समाज में प्रतिष्ठित हूँ। लोग मेरा सम्मान करते हैं। इस शहर एवं देश के बेहद धनाढ्य एवं प्रतिष्ठित लोगों में मेरा नाम है। देश-विदेशों में लोग मुझे जानते हैं। परंतु यह कार्य तुमसे नहीं हो पाता। इसके लिए प्रखर बुद्धि, मेधा एवं समझ चाहिए।''

आशीष की बातों में अहंकार टपक रहा था, परंतु इस सबको सुनकर भी अन्वित का चेहरा शांत था एवं संतोष से परिपूर्ण था। वे बस, मुस्करा रहे थे। दरअसल

अहंकार स्वयं को प्रतिष्ठित करता है और अपने सामने किसी को मानता नहीं है। आशीष को भान नहीं था कि वहाँ उनके गुरु महाराज भी बैठकर उसे सुन रहे हैं। आशीष ने उन्हें देखा तो उसे ग्लानि हुई।

स्वामी अमृतासन ने कहा—"वत्स आशीष! तुमने जो प्राप्त किया, वह अवश्य ही सराहनीय है। निस्संदेह सांसारिक रूप से तुम एक सफल एवं कुशल व्यक्तित्व के धनी हो, पर तुम संसार के हो एवं संसार के रह गए हो। इससे परे एक और भी संसार है, जो संसार को जीतकर पाया जाता है। तुम संसार के हो और इसे तुम जीत नहीं सके, इसलिए तुम्हारी पहुँच उस अनोखे संसार जिसे अध्यात्म का संसार कहा जाता है, तक नहीं है और इसलिए इसकी न तो तुम्हें समझ है और न अनुभव। तुम जान ही नहीं सके कि तुम्हारे मित्र की पहुँच कहाँ तक है और उसकी प्रतिष्ठा कितनी है, इसे देखने के लिए मैं तुम्हें दृष्टि प्रदान करता हूँ।"

इतना कहकर स्वामी जी ने आशीष के माथे को सहलाया। आशीष को एक झटका-सा लगा और वह अन्वित की चेतनात्मक स्थिति को देखने लगा। उसने देखा कि अन्वित ने गुरुकृपा एवं अपने चरम पुरुषार्थ से अपनी वृत्तियों काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, ईर्ष्या, राग को किस प्रकार जीत लिया है। वह अपनी वृत्तियों को नियंत्रित कर उच्चस्तरीय कार्यों में नियोजित करने में सफल हो चुका है। अब उसे वैयक्तिक अवरोध से नहीं समष्टि के अवरोध से दो-चार होना पड़ रहा है और वह वहाँ भी गुरुकृपा से सफल रहा है।"

यह सब देखने के बाद आशीष को स्वयं की प्रतिष्ठा चुभने लगी। उसने गुरु महाराज को साष्टांग दंडवत् करके अनुनय किया—"हे गुरुदेव! मुझे भी इस यात्रा में शामिल कर लें। अब मैं अपने और अन्वित के बीच के यथार्थ अंतर को समझ पा रहा हूँ। मैं संसार को त्याग दूँगा, मुझे भी अध्यात्म के पथ के पथिक रूप में स्वीकार कर लें।" गुरु स्वामी अमृतासन ने कहा—"वत्स! इस जन्म में यह तुम्हारे लिए सुगम नहीं है। हाँ, इस जन्म की तैयारी से अगले जन्म में अध्यात्म में तुम्हारी गति होगी।" आशीष को अन्वित की चेतना की अपूर्व यात्रा के रहस्य की समझ हो गई थी। वह भी इसी की तैयारी में जुट गया। ❀

एक व्यक्ति ने कहीं पढ़ रखा था कि गंगा के किनारे पड़े पत्थरों में एक पत्थर पारस का भी है, जिसे छूते ही हर वस्तु स्वर्ण में बदल जाती है। इसी आस में कि वह पत्थर उसे मिल जाए, वह नित्य गंगा किनारे घूमता, सारे पत्थरों को उलट-पलट कर देखता और पारस पत्थर न मिलने पर उसे वापस गंगा नदी में फेंक देता। वर्षों यही क्रम चलता रहा और उसे पारस नहीं मिला, पर उसे पत्थर उठाकर, घुमा-फिराकर गंगा जी में फेंकने की आदत-सी जरूर हो गई।

एक दिन उसने एक पत्थर उठाया और इससे पहले कि वह समझ पाता कि वही पारस पत्थर है, उसने आदतवश उसे पानी में फेंक दिया। उस पत्थर ने उसके हाथ में पड़े रेत के कणों को छुआ था, वे सभी सोने के हो गए थे, पर पत्थर उसके हाथ से निकल गया था। वर्षों की प्रतीक्षा के बदले कुछ सोने के कण ही उसके हाथ में रह गए। मनुष्य भी ऐसे ही अवसर गँवाता रहता है और यह भूल जाता है कि भगवान ने उसे जीवन का प्रत्येक क्षण एक स्वर्गीय अवसर की तरह दिया है, पर हर क्षण गँवाते-गँवाते ऐसी आदत पड़ जाती है कि ये पता ही नहीं चल पाता कि कौन-सा अवसर जीवन में सौभाग्य ला सकता था। अवसर पहचानने वाले ही जीवन में सफल हो पाते हैं।

प्रेरणाप्रद है भारतीय इतिहास

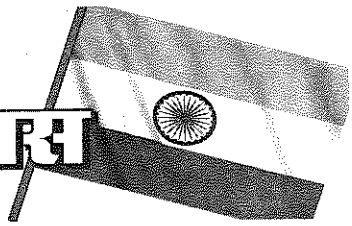

भारतीय इतिहास की दृष्टि गंभीर एवं मूल्यपरक है। भारतीय इतिहास-दृष्टि का स्वभाव एवं प्रकृति दार्शनिक है। अपने इन्हीं चारित्रिक गुणों के कारण भारतीय इतिहास पाश्चात्य इतिहास से भिन्न है। भारतीय इतिहास की अवधारणा दार्शनिक है; जबकि पाश्चात्य इतिहास की वैज्ञानिक। प्रथम की पद्धति समन्वयात्मक है तो दूसरे की विश्लेषणात्मक। भारतीय इतिहास की समन्वयात्मक प्रकृति इसे सर्वोच्च पद प्रदान करती है।

भारतीय इतिहास में काव्य और दर्शन का अनुप्रवेश इसकी बहुआयामी विशेषता को दरसाता है न कि विसंगति को, जिसे पाश्चात्य इतिहास निंदा की दृष्टि से देखता है। इस तथ्य को समझने के लिए भारतीय मनीषा की काल की अवधारणा पर दृष्टिपात करने की आवश्यकता है। काल (time) की भारतीय अवधारणा देश (space) के समानुरूप चलती है। देश और काल, दोनों अन्योन्याश्रित एवं परिपूरक हैं। एक को दूसरे से भिन्न एवं जुदा नहीं किया जा सकता है। दोनों अविभाज्य एवं अखंड हैं।

काल गतिमान भी है और अचल भी। इसी प्रकार देश की गति भी दोहरी है। समस्त सृष्टि अपने केंद्र पर तो अचल है, पर परिधि में चलायमान है। भारतीय इतिहास देश-काल की इस गहरी दृष्टि को स्वीकार करता है। आधुनिक विज्ञान देश-काल के इस नवीन आयाम को तो स्वीकार कर लेता है, परंतु पाश्चात्य इतिहास उसे मान नहीं पाता है। इसी कारण हम रामायण, महाभारत एवं पुराणों को इतिहास मान लेते हैं, परंतु दृष्टि के अभाव में पाश्चात्य इतिहास इस पर विश्वास नहीं कर पाता है।

भारतीय इतिहास में ऋषि एवं मनीषी को महान इतिहासवेत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। ऋषि अपने ध्यान में कालखंडों को समेटकर विषय की समग्रता को आत्मसात् करते हैं। इसी कारण ऋषि वाल्मीकि ने रामायण में अपनी काव्यात्मक शैली में रामावतार की घटना को पूर्व में ही रचित कर दिया था। रामकथा की घटना एक ही साथ ऐतिहासिक एवं शाश्वत बन जाती है। इतिहास इसलिए; क्योंकि इसके महानायक राम जन्म लेते हैं और अंत में मृत्यु का वरण करते हैं और शाश्वत इसलिए; क्योंकि वे ब्रह्म के प्रतीक एवं भगवान विष्णु के अवतार हैं।

रामायण को इतिहास मानने के पीछे अनेक दृष्टांत एवं साक्ष्य विद्यमान हैं। रामायण के महानायक राम अभिधा के स्तर पर दिखाई देते हैं। लक्षणा के स्तर पर वे इंद्र-उपेंद्र का समन्वित रूप हैं। लाक्षणिक स्तर पर यह घटना देवासुर संग्राम का रूप लेती है। अभिधा, लक्षणा, व्यंजना अर्थात ऐतिहासिक, मिथक और दार्शनिक सोच, तीनों परस्पर युक्त हैं। संक्षेप में कहें तो रामायण में एक समग्र इतिहास के संपूर्ण लक्षण विद्यमान हैं।

इस प्रमाण के बावजूद प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ० सुकुमार सेन ने अपनी पुस्तक 'राम कयार प्राक् इतिहास' में रामायण को शास्त्र मानने से इनकार कर दिया है। उनका कथन है कि परंपरा से महाभारत ही शास्त्र माना जाता है; क्योंकि स्मृतियाँ विविध अनुष्ठानों और काव्यों में महाभारत-पाठ का ही विधान करती हैं, रामायण-पाठ का नहीं। अत: रामायण शास्त्र नहीं महज काव्य है, पर तथ्य तो इसके ठीक विपरीत प्रतीत होता है। अनेक अनुष्ठानों में रामायण-पाठ को भागवत-पाठ जैसी महत्ता प्रदान की जाती है।

श्रुति कहती है—**सत्यं वद, धर्मं चर, अतिथि देवो भव** *(अथर्ववेद-३/३०/३)*। इन श्रुतिवचनों को दृश्यरूप देने के लिए मानवीय नायक का चरित्र प्रदान किया जाता है। श्रीमद्भागवत में भी यही लक्ष्य उजागर हुआ है कि परमात्मा का अवतार केवल असुरों के संहार के लिए ही नहीं, बल्कि मानव जाति को शिक्षा देने के लिए, नैतिकता का पाठ पढ़ाने के लिए एवं परंपरा व मूल्यों की रक्षा के लिए भी होता है। अवतारों को भी मनुष्य के सुख-दु:ख, संयोग-वियोग एवं अन्य मानवीय कष्ट-कठिनाइयों से मर्यादापूर्वक एवं साहस के साथ गुजरना पड़ता है। इसीलिए रामायण में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के जीवनचरित का वर्णन मात्र ऐतिहासिक न होकर, हम सबके लिए प्रेरक एवं प्रेरणाप्रद बन जाता है।

भारतीय इतिहास शास्त्रों में जीवंत है। शास्त्रों में वेदों की श्रुतियों को कथानकों एवं कहानियों के माध्यम से अंकित किया गया है। कोई भी ग्रंथ आर्ष की संज्ञा पाता है—इसमें समाहित दिव्य व्यंजना, दिव्य चरित्रों और दिव्य उपदेशों के कारण। इस क्रम में रामायण न केवल उपदेशप्रधान निगम है, बल्कि रहस्यप्रधान आगम भी है। यह उभय निगमागमसम्मत कथा है। यह स्वयं में मंत्रात्मक है; क्योंकि इसके मंत्रों का जप किया जाता है और अभीष्ट की प्राप्ति की जाती है। यह पाठात्मक है और इसका पाठ करके अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त किए जाते हैं। रामायण एक साथ ही आदिकाव्य, महाकाव्य, शास्त्र और काव्य-इतिहास का ज्वलंत प्रमाण है। इस प्रकार अपनी भारत भूमि में रामायण, महाभारत एवं श्रीमद्भागवत, तीनों को समान रूप से शास्त्र की मर्यादा दी जाती है। ये दिव्य इतिहास भी हैं।

भारतीय इतिहास के समीक्षात्मक अध्ययन में यह ध्यान रखना विशेष रूप से आवश्यक है कि यहाँ उठाए गए प्रश्नों का उद्देश्य किसी ग्रंथ विशेष की श्रेष्ठता अन्य ग्रंथों के ऊपर सिद्ध करना नहीं, वरन भारतीय इतिहास के समग्र चिंतन के रूप को दरसाना है। भारतीय इतिहास की उदात्त, दूरदर्शितापूर्ण, दार्शनिक अवधारणा की समन्वयात्मक दृष्टि के कारण ही रामायण जैसे महाकाव्य को इतिहास की मान्यता प्रदान की जाती है। हमारा इतिहास अत्यंत समृद्ध, गूढ़ एवं परम प्रेरणादायी है, जिसके पठन-पाठन एवं अनुपालन से हम अपने आगत एवं विगत, दोनों को श्रेष्ठ कर सकते हैं। भारतीय इतिहास प्रेरणादायी है, अतः हमें इससे प्रेरणा प्राप्त कर मूल्यों का अनुपालन करना चाहिए। ❀

शाब्दिक रूप से धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धृ' धातु से होने के कारण धर्म शब्द का अर्थ होता है—धारण करना। जो तत्त्व सारे संसार को धारण करता है अथवा उसके द्वारा धारण करने योग्य होता है, उसे धर्म कहते हैं। अँगरेजी भाषा की दृष्टि से धर्म 'रिलीजन', व्यक्ति तथा समाज को बाँधने वाला माध्यम है और यही माध्यम उपासक एवं उपास्य, भक्त एवं भगवान तथा आराधक एवं आराध्य के बीच सेतु बन जाता है। सभी चिंतक-विचारक, संत-दार्शनिक, तपस्वी-सुधारक, इसी कारण मानवता के मूलभूत सिद्धांतों को धारण करने वाले तत्त्व को धर्म कहकर पुकारते हैं।

निकट की वार्ताओं के क्रम में परमपूज्य गुरुदेव इसीलिए कहा करते थे कि "सच्चा धार्मिक एक अव्यक्त भाषा बोलता है, जिसे संसार का हर व्यक्ति समझ सकता है। यह वाणी उसके अंतःकरण से भाव-संवेदनाओं के रूप में प्रस्फुटित होती है। विश्व उसका परिवार और संसार का प्रत्येक मनुष्य उसका अपना संबंधी होता है। सबका कल्याण करना ही उसकी पूजा बन जाता है और इसीलिए महात्मा गांधी हों या विनोबा; मार्टिन लूथर किंग हों अथवा कागाबा; संत फ्रांसिस हों या हजरत मुहम्मद; भगवान बुद्ध हों या आचार्य शंकर—ये सभी अपने अंतःकरण में व्याप्त करुणा तथा मानवता के मूलभूत सिद्धांतों को जीने के कारण सच्चे अर्थों में धार्मिक कहे जा सकते हैं।" आज धर्म को लेकर कितनी भी बातें क्यों न होती हों, वस्तुतः धर्म का यही सच्चा स्वरूप है।

जीवन का हर क्षण बहुमूल्य है

जीवन का प्रति पल, हर क्षण महत्त्वपूर्ण है। किसी भी क्षण का मूल्य, किसी दूसरे क्षण से न तो ज्यादा है और न ही कम। आनंद को पाने के लिए किसी विशेष समय की प्रतीक्षा करना नासमझी है। भूत, भविष्य एवं वर्तमान में केवल वर्तमान ही हमारे पास रहता है, केवल इसी का एहसास एवं अनुभव होता है। वर्तमान पल के हाथ से निकल जाने पर वह अतीत का क्षण बन जाता है और अभी के बाद का जो क्षण है, वह आगत है, हमारी पहुँच से बाहर। केवल वर्तमान ही हमारी निधि है, जिसे जीने की जरूरत है। जो ये जानते हैं, वे वर्तमान क्षण का सार्थक उपयोग कर लेते हैं और किसी खास अवसर की प्रतीक्षा करने वाले समूचे जीवन के समय एवं अवसर को ही गँवा देते हैं।

वर्तमान का क्षण अति महत्त्वपूर्ण है। इसी वर्तमान क्षण में शाश्वत छिपा है, जिसमें विराट का दर्शन होता है। समय का प्रवाह अखंड एवं शाश्वत है। इसमें निरंतरता है। हम अपने मन की अवस्था एवं स्थिति के आधार पर इस शाश्वत समय को कालखंडों में विभाजित कर देते हैं; क्योंकि हम शाश्वत में जीने के आदी नहीं हैं। शाश्वत में वही जीता है, जिसका मन तीनों कालखंडों को एक साथ देख लेता है और वह अनुभव करता है कि समय के प्रवाह में न तो कोई व्यतिरेक है और न इसमें कोई व्यतिक्रम हो सकता है। यह तो बस, नदी की धारा की तरह बहता चला जाता है।

क्षण में शाश्वत छिपा है और अणु में विराट। यदि अणु को क्षुद्र और नगण्य मानकर छोड़ दें, तो वह विराट की इस व्यापकता को खो देता है। अणु ही वह इकाई है, जिससे सृष्टि का निर्माण हुआ है। अणु की सूक्ष्मता में सृष्टि की व्यापकता सन्निहित होती है। जैसे बीज में विराट वृक्ष की समस्त एवं संपूर्ण संभावनाएँ छिपी होती हैं, जैसे गागर में सागर का दिग्दर्शन होता है, वैसे ही एक अणु में सृष्टि व्याप्त है। इसी तरह जिसने क्षण का तिरस्कार किया, वह शाश्वत से अपना नाता तुड़ा लेता है, संबंध विच्छेद कर देता है। यह क्षण बड़ा विशिष्ट होता है; क्योंकि क्षण, समय के शाश्वत प्रवाह की कड़ी है। इस वर्तमान क्षण के पीछे अतीत और आगे आगम की कड़ियाँ जुड़ती हैं।

वर्तमान के क्षणों को यों ही निरर्थक मानकर महत्त्वहीन समझ लेने की भूल नहीं करनी चाहिए; क्योंकि यही द्वार है—जीवन में प्रवेश करने का। जो जीवन को जानता है, इसके उद्देश्य एवं लक्ष्य को भी समझता है, उसे वर्तमान के क्षणों में ही गहरे, गहन अवगाहन करने से परम की उपलब्धि होती है। यह सब कुछ निर्भर करता है—वर्तमान के क्षणों एवं पलों के सदुपयोग एवं उनके सुनियोजन से।

क्षण-क्षण से ही जीवन बनता है। इस सत्य की समझ से ही जीवन का रहस्य अनावृत होता है। जिन्हें भी

यजनं धर्म देश जाति मर्यादारक्षायै
महापुरुषाणामेकीकरणं यज्ञः॥

अर्थात श्रेष्ठ पुरुषों को धर्म, देश, जाति की मर्यादा की रक्षा के लिए संगठित एवं एकत्रित करना ही यज्ञ है।

इस सत्य की अनुभूति हुई, उन सबने यही कहा है कि जीवन समय का पर्याय है, जो झाग के बुलबुले के समान उठता-गिरता रहता है। जो इस घड़ी है, अगली घड़ी मिट जाएगा। अतः इस घड़ी को सहेज लेना चाहिए, जी लेना चाहिए अन्यथा सब कुछ नष्ट हो जाएगा। वर्तमान को छोड़ भविष्य की योजना बनाना एक दिवास्वप्न के समान है और ऐसे ही वर्तमान को छोड़कर अतीत में उलझे रहना एक विडंबना के समान, परंतु जो वर्तमान को पहचान लेते हैं, उसके प्रति सजग रहते हैं, वे एक ऐसे जीवन को प्राप्त कर लेते हैं, जिसका प्रत्येक क्षण मूल्यवान हो जाता है।

जीवन के इस सत्य का अनुभव करने वाले एक फकीर को किसी बादशाह ने कैद कर लिया। कैद की

वजह यह थी कि उसने बादशाह के सामने समय की शाश्वता की सचाई प्रकट कर दी थी। बादशाह को फकीर ने कहा—''वर्तमान को सँभाल लो, जीवन सँभल जाएगा; वर्तमान को सहेज लो तो जीवन सार्थक हो जाएगा। खुद को बादशाह कहते हो और जीते हो दंभ एवं अहंकार में! सच्चा बादशाह तो वही होता है, जो जीवन के सब रहस्यों को समझकर इसके आनंद को अनुभव करे।''

बादशाह को फकीर का कहा सच अप्रिय लगा, सो उसने उसे कैद कर लिया। उस फकीर के एक मित्र ने उससे कहा—''आखिर यह बैठे-बैठाए मुसीबत क्यों मोल ले ली? न कहते वे सब बातें, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाता और बोल भी दिया तो वह कौन-सा बदल गया?'' अपने मित्र की बातें सुनकर फकीर हँस पड़ा और बोला—''मैं करूँ भी तो क्या करूँ? जब से खुदा का दीदार हुआ है; जब से समय के महत्त्व का अनुभव हुआ है, तब से झूठ बेमानी हो गया है। कोशिश करने पर भी रहा नहीं जाता और झूठ तो बोला ही नहीं जाता। समय की महत्ता एवं परमात्मा की सत्ता ही कुछ ऐसी है कि उसे अनुभव करने के बाद असत्य का ख्याल ही नहीं आता। समय के एक-एक क्षण को परमात्मा के पावन चरणों में समर्पित कर देने की उमंग मन में उठती है। समय के इस सार्थक सदुपयोग के अलावा कुछ समझ में नहीं आता। इन क्षणों में सत्य के अतिरिक्त अब जीवन में कोई विकल्प नहीं है। फिर इस कैद का क्या? यह कैद तो बस, घड़ीभर की है।'' फकीर की कही हुई यह बात जेल के किसी सिपाही ने सुन ली और बादशाह को बता भी दी।

सिपाही की बात सुनकर उस बादशाह ने कहा—''उस पागल एवं फक्कड़ फकीर से कहना कि यह कैद घड़ीभर की नहीं, बल्कि जीवनभर की है। उसे जीवनभर इसी कालकोठरी में सड़ते हुए मरना है। जीवनभर उसे उसी कैद में रहते हुए यह याद रखना होगा कि मैं भविष्य को अपनी मुट्ठी में भर सकता हूँ।'' फकीर ने जब बादशाह के इस कथन को सुना तो एक उन्मुक्त हँसी वातावरण में तैर गई। फकीर ने कहा—''ओ भाई! उस नादान बादशाह से कहना कि उस पागल फकीर ने कहा है कि क्या जिंदगी उसकी मुट्ठी में कैद है? क्या उसकी सामर्थ्य समय के पहिए को थामने की ताकत रखती है? क्या उसे पता है कि पलभर के बाद क्या घटने वाला है?'' बादशाह तक फकीर की ये बातें पहुँच पातीं, इससे पूर्व ही बादशाह को यकायक हृदय का दौरा पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई। नए बादशाह ने फकीर को आजाद कर दिया। अब फकीर के मित्र को पता चला कि समय की समझ रखने वाला ही असली बादशाह है।

सचमुच ही जो जीवन का सत्य पाना चाहता है, उसे वर्तमान क्षण में जीने की कला आनी चाहिए। जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि किसी भी क्षण को बेकार न जाने दिया जाए और हर क्षण शुभकर्म करते रहा जाए। बूँद-बूँद से सागर बनता है और क्षण-क्षण से जीवन। बूँद को जो पहचान ले, वह सागर को जान लेता है और क्षण को जो पा ले, वह जीवन को पा लेता है। जो जीवन को पा लेता है, वही स्वयं को परमात्मा के प्रति समर्पण कर सकता है। क्षण में शाश्वत की पहचान ही जीवन का आध्यात्मिक रहस्य है। ❀

स्वामी विवेकानंद से विदेशी शिष्यों ने पूछा—''ज्ञानी के क्या लक्षण हैं?'' वे बोले कि उनके गुरु कहा करते थे—''बच्चे में आसक्ति नहीं रहती। अभी उसने घरौंदा बनाया। कोई उसे छू ले तो तिनककर नाचने लगे, रोना शुरू कर दे, परंतु खुद ही थोड़ी देर में उसे बिगाड़ डालता है। अभी-अभी देखो तो कपड़े पर रीझा हुआ है। कहता है—'मेरे बाबू जी ने लिया है, मैं नहीं दूँगा।' परंतु एक खिलौना दो, बस, भूल जाता है, कपड़े को वहीं छोड़कर चला जाता है। यही सब ज्ञानी के लक्षण हैं। चाहे घर में बड़ा ऐश्वर्य हो, परंतु दिल में आ जाए तो सब छोड़-छाड़कर काशी की राह पकड़ ले।''

घर की लक्ष्मी हैं गृहिणियाँ

घर को सँभालने वालीं, परिवार के हर सदस्य की सेवा में तत्पर रहने वालीं, उनके सुख-दुःख का ध्यान रखने वालीं गृहिणियाँ घर की सौभाग्यलक्ष्मियाँ हैं। हालाँकि आधुनिकता के अभिशाप से ग्रस्त कतिपय लोग उनके सेवाभाव व कार्य के महत्त्व को नजरअंदाज करते हैं। उन्हें कमतर आँकते हैं। ऐसी सोच के लोगों ने गृहिणी को दोयम दरजे की महिला मान लिया है। उनकी ऐसी मान्यता का कारण धन का अर्जन है। इनका कहना है कि श्रेष्ठ महिलाएँ वे हैं, जो नौकरी करती हैं, धन कमाती हैं, अर्थोपार्जन में पुरुष का हाथ बँटाती हैं। यहाँ यह स्पष्ट करने का मन है कि अर्थोपार्जन में पुरुष या पति का हाथ बँटाना बुरा नहीं है। इसमें भी नारी की श्रमशीलता व प्रतिभा की ही झलक मिलती है, परंतु इससे घर की देख-भाल करने वाली, बच्चों के शील, संस्कार व शिक्षा पर ध्यान देने वाली नारी का महत्त्व कम नहीं हो जाता।

घरेलू महिलाओं की तुलना में कामकाजी महिलाओं को श्रेष्ठ मानने की पृष्ठभूमि में अर्थदृष्टि प्रमुख है। धन ही सब कुछ है, यह सोच है। जीवन के संचालन में धन महत्त्वपूर्ण है, इससे किसी को भला क्या इनकार हो सकता है। लेकिन धन सब कुछ है, यह मानना पूरी तरह से सही नहीं है। धन के साथ शील, संस्कार, संवेदना, सेवा आदि भी महत्त्वपूर्ण हैं। धन व इसके उपार्जन को दृष्टि में रखकर भी सोचा जाए तो घरेलू महिलाएँ नौकरीशुदा महिलाओं की तरह कोई कमाई भले ही न करती हों, लेकिन खाना पकाने, बच्चों को पढ़ाने से लेकर घर के अनगिनत काम करके पाई-पाई बचाती जरूर हैं। हालाँकि यह भी सच है कि हाल में किए गए सर्वेक्षण इस सच को बताते हैं कि घर की कमाई में महिलाओं का योगदान कम नहीं है।

गृह मंत्रालय की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार देश में दो करोड़ सत्तर लाख परिवार ऐसे हैं, जिनकी कमाई घर की महिला सदस्यों पर टिकी है। इस रिपोर्ट में घरों की जनगणना करके यह देखने की कोशिश हुई है कि पिछले दस वर्षों में सामाजिक और आर्थिक नजरिए से पारिवारिक ढाँचे में कितना बदलाव आया है। इस प्रक्रिया में यह नतीजा सामने आया है कि पिछले दस वर्षों में देश में पुरुषप्रधान परिवारों की संख्या में कमी आने के साथ महिलाप्रधान परिवारों की संख्या बढ़ी है। जनगणना के इतिहास में पहली बार इस तरह के आँकड़े आना यह साबित करता है कि घर की कमाई में महिलाओं की भूमिका बढ़ गई है। हालाँकि इस सच को शायद अभी पुरुषवादी मानसिकता स्वीकार न कर पाए।

घरेलू महिलाओं की भूमिका बार-बार कमतर कहे जाने के कारण ही भारत सरकार के बाल कल्याण विभाग ने यह सुझाव दिया था कि घरेलू महिलाओं को अपने पति की आमदनी का कुछ हिस्सा मिलना चाहिए। उनका यह सुझाव आने के बाद उन माताओं व दादियों को भी ऐसी कुछ राशि देने की माँग उठी थी, जो वर्किंग कपल के नौकरी पर चले जाने के बाद घर व बच्चों की देख-भाल करती हैं। इस सुझाव की स्वीकार्यता या अस्वीकार्यता के बारे में कई मत व अनेक मतभेद हो सकते हैं। लेकिन इस सच से तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि जो महिलाएँ घर में साफ-सफाई करती हैं, दिन में कई बार नाश्ता-खाना बनाती हैं, कपड़े धोती हैं, बच्चों को पालती हैं, उन्हें सुबह-सुबह स्कूल के लिए तैयार करती हैं, उनकी हैसियत एक प्रतिष्ठित सोशल इंजीनियर की तो है ही। इस हैसियत के सम्मान व सुविधाओं की तो वे निश्चित ही हकदार हैं।

घर में रोजमर्रा के कामों को किसी और माध्यम से करने पर अत्यधिक खरच तो आता ही है, साथ ही घर में शील-संस्कार व संवेदना की बात रह ही जाती है। निश्चित ही घर में धन-साधन के साथ सम्मान का भी उन्हें नैसर्गिक हक है। हाँ, पारंपरिक सोच यह जरूर कहती है कि गाँव के कुएँ या बावड़ी से पानी लाना, किसान पति को खेत पर खाना पहुँचाना, कंडों के लिए गोबर थापना, बच्चों को पालना-पोसना, शहर में उन्हें स्कूल भेजने-लेने जाना आदि सारे काम घरेलू श्रेणी के हैं और ये काम नहीं, घरेलू महिलाओं के कर्त्तव्य हैं, जिनका उन्हें अनिवार्य

रूप से पालन करना है। इन घरेलू महिलाओं का भी घर के धन व संसाधन पर नैसर्गिक अधिकार है। वे घर के जिस काम-काज में दिनभर खपती हैं, वह सिर्फ उनका फर्ज नहीं है, बल्कि घर की अर्थ-व्यवस्था में उनके योगदान का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

घरेलू महिलाओं के काम-काज के आर्थिक मूल्यांकन का प्रश्न माननीय सर्वोच्च न्यायालय भी उठा चुका है। जुलाई, २०१० में सर्वोच्च न्यायालय में एक दुर्घटना की शिकायत हुई। उत्तर प्रदेश की एक महिला के परिजनों को दी जाने वाली मुआवजा राशि ढाई लाख से बढ़ाकर साढ़े छह लाख रुपये का आदेश देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसी ही टिप्पणी की थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि एक गृहिणी या हाउसवाइफ के काम को अनुत्पादक मानना महिलाओं के प्रति भेदभाव है। न्यायालय ने इस बात पर हैरानी जताई थी कि जनगणना तक में घरेलू महिलाओं के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया झलकता है।

२००१ की जनगणना में खाना पकाने, बरतन साफ करने, बच्चों की देख-भाल करने, पानी लाने, जलावन एकत्र करने जैसे घरेलू काम करने वाली महिलाओं को गैरश्रमिक वर्ग में रखा गया था और आश्चर्यजनक रूप से उनकी तुलना भिखारियों और कैदियों जैसे अनुत्पादक समझे जाने वाले वर्ग से की गई थी। ऐसे दृष्टिकोण को पूरी तरह से गलत बताते हुए अदालत ने उस शोध की चर्चा की थी, जिसमें भारत की करीब ३६ करोड़ गृहिणियों के कार्यों का वार्षिक मूल्य लगभग ६१२.८ अरब डालर आँका गया है। इस प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा था कि संसद को कानून में संशोधन करना चाहिए, ताकि किसी दुर्घटना या वैवाहित संपत्ति के बँटवारे के समय उनके कार्यों का संतुलित दृष्टिकोण से मूल्यांकन हो सके।

घरेलू महिलाओं के काम-काज की कीमत और उनकी हैसियत के आकलन का मुद्दा दरअसल एक सामाजिक सच की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। घरेलू काम-काज की कीमत नहीं आँके जाने के कारण ही महिलाएँ आज उपेक्षित बनी हुई हैं। चर्चाएँ भले ही कितनी ही और कहीं भी की जाती हों, पर सच यही है कि आज भी हमारे समाज में गृहिणी या हाउसवाइफ के कार्यों को दोयम दरजे का समझा जाता है। घरेलू महिलाओं के काम-काज के बारे में आम धारणा यही है कि यह सब तो उन्हें हर हाल में करना है। हालाँकि बदले में उन्हें रुपये-पैसे तो क्या आवश्यक सम्मान और स्नेह तक नहीं मिलता। यह व्यवहार उन्हें शारीरिक और मानसिक रूप से आहत कर देता है।

व्यापक एवं गहन परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर निष्कर्ष यही निकलता है कि परिवार व समाज की नींव महिलाओं के उन्हीं कार्यों पर टिकी है, जो कहीं दर्ज नहीं किए जाते। ग्रामीण जीवन में तो महिलाओं के योगदान के बगैर कृषिकार्य संभव ही नहीं है। शहरों में भी स्थिति अलग नहीं है। हाल के वर्षों में शिक्षित महिलाओं के एक बड़े तबके ने रोटी-रोजगार के नए-नए क्षेत्रों में प्रयोग किया है, लेकिन एक बड़ी संख्या उनकी भी है, जिन्होंने अपनी उच्च शिक्षा के बावजूद सोच-समझकर गृहिणी या हाउसवाइफ बनना स्वीकार किया है, ताकि वे घर-परिवार को पर्याप्त समय दे सकें और बच्चों का भविष्य बना सकें। वे घर-परिवार के रोजमर्रा के जीवन को बेहतर बनाने के लिए जो योगदान कर रही हैं, उसका महत्त्व किसी भी रूप में कम नहीं है। यह अलग बात है कि विभिन्न उत्पादन सेक्टरों की तरह उनके काम को आँकने का कोई ठोस पैमाना हम नहीं बना सके हैं। आज इसकी आवश्यकता आ पड़ी है। समाज को गृहिणियों के कार्य को महत्त्व देना होगा, उनका मूल्यांकन करना होगा। अगर समाज ऐसी मानसिकता विकसित कर पाएगा तो कई समस्याएँ स्वयं ही सुलझ जाएँगी। साथ ही यह भी सुस्पष्ट हो सकेगा कि गृहिणी ही यथार्थ में घर-परिवार व समाज की श्री, शोभा व सौभाग्यलक्ष्मी है।

हमारा प्रयोजन समझने में किसी को भूल नहीं करनी चाहिए। हम प्रचंड आत्मशक्ति की एक ऐसी गंगा को लाने जा रहे हैं, जिससे अभिशप्त सगरसुतों की तरह आग में जलते और नरक में बिलखते जनसमाज को आशा और उल्लास का लाभ दे सकें। हम लोक-मानस को बदलना चाहते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

बिना परिश्रम के मूल्यहीन है जीवन

सुप्रसिद्ध दार्शनिक कन्फ्यूशियस के बुद्धिमान शिष्य चाँग हो चाँग एक बार भ्रमण के लिए निकले। प्रजा की भलाई के लिए सामाजिक अध्ययन और उपयुक्त वातावरण का शोध इस भ्रमण का मुख्य उद्देश्य था। घूमते-घूमते चाँग ताईवान पहुँचे। वहाँ एक युवा माली कुएँ से जल निकाल रहा था, बालटी-बालटी पानी निकालने और फिर ढोकर हर पौधे तक पहुँचाने में उसे बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ रहा था। माली की देह पसीने से तर हो रही थी तो भी काफी काम बाकी पड़ा था। चाँग को उस पर बड़ी दया आई। काफी देर सोचते रहे कि कोई उपाय नहीं है क्या, जिससे माली का परिश्रम हलका किया जा सके।

विचार न करें तो सैकड़ों वर्षों की सड़ी-गली परंपराएँ भी सगे-संबंधियों की तरह चिपके रहकर कष्ट देती रहती हैं, पर विचार करें तो उसकी एक छोटी-सी लहर भी उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। चाँग ने सोचा—यदि लकड़ियों की एक घिर्री बनाकर उसमें रस्सी लपेटकर खड़े-खड़े ही खींचने का प्रबंध हो जाए और यहीं से प्रत्येक वृक्ष तक के लिए नाली खोद ली जाए तो माली का यथेष्ट श्रम बच सकता है। इतने ही परिश्रम में वह पहले से अधिक काम कर सकता है।

माली ने इस योजना के लाभ समझे और उसे मान लिया। ढेंकलीनुमा पानी खींचने की व्यवस्था हो गई। अब माली वहीं खड़े होकर पानी निकालकर पौधे सींचने लगा। समय तो बचा, पर माली ने देखा कि अब उसके चलने-फिरने, झुकने-लचकने के कई व्यायाम नहीं हो रहे, इसलिए शरीर के कुछ अंग शिथिल रहने लगे हैं, तो भी उसे इस बात का संतोष था कि पहले से कुछ अधिक काम हो जाने से शरीर का हर अंग कुछ न कुछ तो क्रियाशील हो ही जाता है, इसलिए स्वास्थ्य में गिरावट की कोई विशेष चिंता नहीं हुई।

चाँग आगे बढ़ गए। बहुत दिनों तक घूमने के बाद वे फिर उसी रास्ते वापस लौटे तो उनके मस्तिष्क में एक और बात याद आई कि यदि कुएँ में भाप से चलने वाली मशीन डाल दी जाए, तो परिश्रम भी बिलकुल कम हो जाएगा और वृक्षों को जल भी खूब मिलने लगेगा। माली ने यह प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया। भाप का इंजन लग गया, माली को चैन हो गया।

काफी दिन बीतने के बाद एक दिन चाँग की इच्छा उस बाग को देखने की हुई, उन्होंने सोचा कि बगीचा अब लहलहा रहा होगा, पर वहाँ आकर देखा तो वे स्तब्ध रह गए। बगीचा तो सूख चुका था। पूछने पर पता चला कि माली बीमार रहता है। इसलिए कभी-कभी ही पौधों को पानी मिल पाता है, इसी से पेड़-पौधे मुरझा रहे हैं। चाँग माली को देखने उसके घर गए। सचमुच माली बीमार था। उसके हाथ सूख गए थे। टाँगें कमजोर हो गई थीं, पेट में दो रोटी से ज्यादा नहीं पचा सकता था। माली का मुँह पीला पड़ गया था।

चाँग ने पूछा—"कहो भाई! क्या अभी भी अधिक परिश्रम करना पड़ता है क्या, तो कोई और तरकीब सोचें?" पास खड़ी मालिन हाथ जोड़कर बोली—"श्रीमान जी! और तरकीब लड़ाने की अपेक्षा तो आप इन्हें ऐसी सीख दीजिए कि पहले की तरह फिर से अपने हाथ से ही काम करने लगें। ढेंकली का आराम ही इनकी बीमारी का कारण है।"

चाँग अपने एकांगी चिंतन पर बहुत पछताए। उन्होंने सोचा कि यदि मनुष्य यांत्रिक और बिना परिश्रम के जीवन के आकर्षण में न पड़ता तो वह क्यों तो अस्वस्थ होता और क्यों रोगी बनता? उन्होंने माली से अपनी स्त्री की ही राय मान लेने की सीख दी और वहाँ से वापस लौट आए। माली अपनी पूर्व जीवनपद्धति में आकर पुनः स्वस्थ हो गया, पर उसकी छूत आज की पीढ़ी को लग गई, जो मशीनों से काम लेकर स्वयं आराम से बैठना चाह रहे हैं। माली की तरह वे न तो उत्पादन बढ़ा पाते हैं, न बीमारी हटा पाते हैं। केवल मशीनें बढ़ रही हैं और मनुष्य उनमें निरंतर दबता-पिसता चला जा रहा है। बिना परिश्रम के जीवन मूल्यहीन और नाकारा हो जाता है।

पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्म

वैज्ञानिक अध्यात्मवाद आधुनिक समय में एक नया चिंतन, नूतन विचारधारा है। इसकी पृष्ठभूमि में दार्शनिक सिद्धांतों एवं वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का समन्वित आधार है तथा इसके स्वरूप में एक समग्र और सर्वांगीण जीवनपद्धति का दर्शन मौजूद है। इस चिंतन में क्रिया, चिंतन व संवेदना का समुचित स्थान है तथा धर्म, दर्शन व विज्ञान की विचारशक्तियों का सार्थक समन्वय है। इस तरह यह आज का नया चिंतन भी है और भावी सभ्यता के लिए एक पूर्ण और सर्वांग जीवनदर्शन भी है। परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने अपने साहित्य में इसकी विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की है। इस नई विचारधारा में आध्यात्मिक मूल्यों और वैज्ञानिक जीवनदृष्टि के समन्वय से एक नया सिद्धांत जन्म लेता है, वह है—वैज्ञानिक अध्यात्मवाद। यद्यपि यह सिद्धांत एक विचारधारा अथवा वाद के रूप में भले ही सर्वथा नया है; किंतु इसके विचारसूत्र हमारे ऋषिचिंतन में पहले से ही मौजूद रहे हैं।

उक्त तथ्य की पुष्टि तथा वैज्ञानिक अध्यात्म के संप्रत्यय को तर्क, तथ्य एवं प्रमाण के आधार पर प्रस्तुत करने वाला एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय में पूरा किया गया है। वर्ष २०११ में मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग के अंतर्गत शोधार्थी असीम कुलश्रेष्ठ द्वारा संपन्न किए गए इस शोधकार्य का विषय था—**'पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्म का संप्रत्यय एवं प्रारूप: एक समीक्षात्मक अध्ययन'**। यह अध्ययन कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के संरक्षण एवं डॉ० सुरेश लाल बर्णवाल के निर्देशन में पूरा किया। इस अध्ययन को कुल सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय है—विषय प्रवेश। इसमें भारतीय एवं पाश्चात्य विचारधारा की दार्शनिक अवधारणाओं को प्रस्तुत करते हुए दोनों में अंतर को स्पष्ट किया गया है। साथ ही भारतीय दर्शन की विशेषताओं की विवेचना करते हुए पातंजल योगसूत्र का परिचय और महत्त्व समझाया गया है। दर्शन एक विशेष जीवनदृष्टि है, जो जीवन को सुगढ़ बनाती है तथा मनुष्य की जीवनयात्रा को अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायता करती है। पश्चिमी दर्शन का आधार नैतिक रहा है; जबकि भारतीय दर्शन की मूलवृत्ति आध्यात्मिक रही है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र में भारतीय दर्शन के सभी प्रमुख सिद्धांतों का सार समाहित है। इस ग्रंथ का योगशास्त्रों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके १९५ सूत्रों में मानव चेतना के विभिन्न आयामों की सूक्ष्मतम व्याख्या एवं चेतना के चरम विकास की वैज्ञानिक प्रक्रिया प्रस्तुत हुई है।

द्वितीय अध्याय है—पातंजल योगसूत्र में अध्यात्म और विज्ञान। इसके अंतर्गत अध्यात्म एवं विज्ञान—इन दोनों संप्रत्ययों का अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य एवं महत्त्व का विवेचन करते हुए पातंजल योगसूत्र में अध्यात्म तथा विज्ञान के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या की गई है। पातंजल योगसूत्र में मानव चेतना को परिष्कृत कर परम लक्ष्य की प्राप्ति के रूप में अध्यात्म तत्त्व को योग-साधना का शिखर माना गया है, किंतु यहाँ तक पहुँचने की प्रक्रिया पूर्णत: वैज्ञानिक और प्रयोगात्मक रूप में प्रस्तुत हुई है। पातंजल के अष्टांग योग को योग विज्ञान के वैज्ञानिक प्रयोगों का एक श्रेष्ठतम उदाहरण बताया गया है।

तृतीय अध्याय है—पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्मवाद का संप्रत्यय। इस अध्याय में सर्वप्रथम वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की परंपरागत प्रणालियों की विवेचना करते हुए उनकी सीमाओं को स्पष्ट किया गया है तथा एक सर्वांगीण प्रणाली को शोध की अनिवार्य आवश्यकता बताते हुए वैज्ञानिक अध्यात्म के स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्म के संप्रत्यय की विस्तृत विवेचना की गई है। अध्ययन के इस आयाम में यह स्पष्ट करने का प्रयास है कि वैज्ञानिक अध्यात्म के संप्रत्यय में वैज्ञानिकता, दार्शनिकता और आध्यात्मिकता के मौलिक तत्त्वों का पारस्परिक महत्त्व और समन्वय है। इसी को आचार्य जी

ने क्रिया, विचार और भाव की एकरूपता का विज्ञान कहा है। पातंजल योगसूत्र में वर्णित क्रियायोग में भी तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान की त्रिआयामी प्रक्रिया में कर्म, विचार और भाव परिष्कार का विज्ञान समाहित है।

चतुर्थ अध्याय है—पातंजल योगसूत्र में अध्यात्म की वैज्ञानिक प्रक्रिया। इसके अंतर्गत धर्म, दर्शन व विज्ञान की एकांगीयता को प्रकट करते हुए वैज्ञानिक अध्यात्म को समग्र उपयोगी प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा इस प्रक्रिया को वर्तमान समय की आवश्यकता बताया गया है। इसके साथ ही अध्यात्म की वैज्ञानिक प्रक्रिया तथा विज्ञान की प्रायोगिक प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए पातंजल योगसूत्र में निहित वैज्ञानिक प्रक्रिया का विवेचन किया गया है।

पंचम अध्याय है—पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्म की प्रक्रिया के परिणाम। इस अध्याय में वैज्ञानिक अध्यात्म की प्रक्रिया के परिणामों को विभिन्न मतों के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इन मतों में सर्वप्रथम याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र, विश्वारा, अथर्वण आदि के मतों की विवेचना की गई है तथा मध्ययुगीन चिंतन में बुद्ध और महावीर के विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इसके साथ ही आधुनिक मतों में स्वामी विवेकानंद, श्रीअरविंद, प्रफुल्लचंद्र राय एवं डॉ० प्रणव पण्ड्या के विचारों में वैज्ञानिक अध्यात्म की प्रक्रिया के परिणामों की व्याख्या की गई है। पातंजल योगसूत्र में इन परिणामों की विवेचना सिद्धियों और विभूतियों के रूप में की गई है तथा योग विज्ञान एवं यौगिक तकनीकों के मुख्य लक्ष्य के रूप में समाधितत्त्व पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

षष्ठ अध्याय है—पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्म का प्रारूप। अध्ययन के इस सोपान में विभिन्न यौगिक मतों के अनुसार, मानवीय चेतना के स्वरूप का वर्णन करते हुए वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रारूप को निर्धारित करने वाले तथ्यों को स्पष्ट किया गया है। इसके साथ ही इन तथ्यों के आधार पर पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्म के प्रारूप की विवेचना की गई है। इसमें मानव चेतना के प्रत्येक स्तर—शरीर, प्राण, चित्त और आत्मा को प्रभावित करने वाली पातंजल योग की वर्णित तकनीकों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है तथा इन तकनीकों की विवेचना वैज्ञानिक अध्यात्म की कसौटी के आधार पर प्रस्तुत की गई है।

सप्तम अध्याय है—उपसंहार। अध्ययन के इस अंतिम भाग में सभी अध्यायों का सार संक्षेप प्रस्तुत करते हुए इस अध्ययन के निष्कर्ष रूप में वैज्ञानिक अध्यात्मवाद तथा पातंजल योगदर्शन के वर्तमान तथा भावी महत्त्व को रेखांकित किया गया है।

यौगिक दृष्टिकोण पर आधृत यह शोध-अध्ययन वैज्ञानिक अध्यात्म के रूप में सर्वथा एक नई विचारधारा की सैद्धांतिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही एक समग्र जीवनदर्शन के प्रारूप का प्रतिपादन भी करता है, जिसे अपनाकर जीवन में उत्कृष्टता और श्रेष्ठता का समावेश किया जा सकता है।

राजा ने अपने एक बुद्धिमान मंत्री से प्रश्न किया—"वह कौन-सा मार्ग है, जो मनुष्य को संसार के चक्र से मुक्त कर देता है?" मंत्री ने उत्तर दिया—"महाराज! शास्त्रों में कहा गया है कि ' '

अर्थात सत्य ही वह आश्रय है, जो मनुष्य को संसार सागर से तारकर स्वर्ग तक पहुँचा देता है। यदि मनुष्य मात्र सत्य का सहारा ले ले तो सत्य-वदन में इतनी सामर्थ्य है कि वह मनुष्य को संसाररूपी इस भवसागर से पार करा सकता है। देखने में भले ही सत्य का मार्ग दुष्कर और दुरूह लगे, पर यही एकमात्र मार्ग है, जो मनुष्य को जन्म-जन्मांतरों के कषाय-कल्मषों से मुक्त करता है और साथ ही इस संसारचक्र से मुक्ति का मार्ग सुनिश्चित करता है।"

अंतर्जगत की यात्रा का ज्ञान-विज्ञान — ३

जीवन के शीर्षासन से प्राप्त होती हैं दुर्लभ सिद्धियाँ

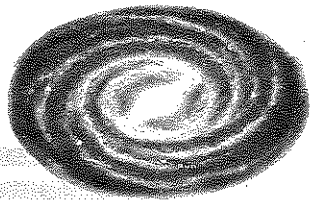

अंतर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग अपनी प्रगाढ़ता व परिपक्वता से मन को परिष्कृत व प्रकाशित करते हैं। महर्षि पतंजलि के योगदर्शन में यह सत्य बड़ी सुस्पष्ट रीति से उजागर होता है कि 'जीवन मन का दर्पण है'। इसका अर्थ यह है कि जीवन का जो भी स्वरूप है, यहाँ जो भी घटनाक्रम घटित होते हैं, वे सब-के-सब अपने ही मन के प्रतिबिंब हैं, अपने मन की प्रतिच्छाया हैं। बात समझने की है, सोचने व विचार करने की है। जीवन की गंदगी, जीवन के कलुष व मैल पर अनेकों चर्चाएँ होती हैं। कई तरह की चिंताएँ व्यक्त की जाती हैं, वार्ताएँ आयोजित होती हैं। हालाँकि इनका कोई विशेष प्रतिफल नहीं होता, स्थिति जस की तस बनी रहती है। कारण बड़ा स्पष्ट है, यदि जीवन को सुधारना है, सँवारना है तो मन को सुधारना, सँवारना होगा। जीवन का कलुष हटाने के लिए मन को निष्कलुष करना होगा। जीवन में मैल न हो, इसके लिए मन का निर्मल होना अनिवार्य है।

ऋषि पतंजलि की योग-विधियाँ, उनके योग के प्रयोग मन को निष्कलुष, निर्मल व परिष्कृत बनाने के लिए हैं। उनके निष्कर्ष कहते हैं कि यदि मन के परिष्कार की प्रक्रिया निरंतर रहे, तो न केवल जीवन परिष्कृत होता है, बल्कि इसमें अनेकों दिव्य व दैवीय शक्तियों का उदय होता है। ऐसी स्थिति में अनगिनत असंभव, संभव व साकार किए जा सकते हैं। योग व तप-साधना की भूमि भारत में महर्षि के इस निष्कर्ष को अनेकों ने अपने जीवन की अनुभूति बनाया है। स्वाधीनता युग के संत ऋषि श्रीअरविंद ने अपनी ऐसी ही साधना अनुभूति को शब्द देते हुए कहा—"अंत:करण के नियंत्रण से बाहरी परिस्थितियों को नियंत्रित किया जा सकता है।" आज जब सब तरफ जीवन में कलुष, गंदगी व्याप्त हो रही है, महर्षि की योग-विधियाँ कारगर समाधान हैं।

इस योगकथा की पिछली कड़ियों में इस सत्य का उद्घाटन किया जाता रहा है। अभी पिछली कड़ी में इसको ही बताते हुए कहा गया था—'पुरुष, सच्चेतना व सत्त्व, सद्बुद्धि के बीच अंतर कर पाने की अयोग्यता के कारण, इसी अयोग्यता के परिणामस्वरूप अनुभव के योग का उद्भव होता है।' यद्यपि ये तत्त्व नितांत भिन्न हैं। स्वार्थ पर संयम करने से अन्य ज्ञान से भिन्न पुरुष ज्ञान उपलब्ध होता है। महर्षि के इस कथन में जोर देकर यह बात कही गई है—स्वार्थ पर संयम। अपने सच्चे स्व से हम अपरिचित हैं। उस ओर हमारी एकाग्रता नहीं है। हमारा ध्यान नहीं है। हम केंद्रित होते हैं बाहर की ओर। दूसरों से अपना तादात्म्य बिठाते हैं। इस कोशिश में मन को गंदा करते हैं। भोग, कर्म व संस्कार की गंदगी, मन पर छाती जाती है। इसका प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ता है। भोग की सघनता व गहनता के अनुरूप ही जीवन का अँधियारा भी सघन व गहन हो जाता है। इससे छुटकारे का उपाय बस एक ही है—मन को परिष्कृत व प्रकाशित करना। ऐसा हो तो मन में उत्पन्न होता है प्रातिभ ज्ञान। साथ ही विकसित होती हैं—अलौकिक शक्तियाँ।

इस स्थिति को महर्षि ने अपने अगले सूत्र में स्पष्ट किया है—

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥ ३/३६ ॥

शब्दार्थ = **ततः** = उस (स्वार्थ संयम) से; **प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ताः** = प्रातिभ, श्रावण, वेदन, आदर्श, आस्वाद और वार्ता—ये (छह सिद्धियाँ); **जायन्ते** = प्रकट होती हैं।

भावार्थ = इसके पश्चात अंतर्बोधयुक्त श्रवण, स्पर्श, दृष्टि, आस्वाद और आघ्राण की उपलब्धि चली आती है।

योगऋषि पतंजलि का यह सूत्र अपने आप में कई रहस्य समेटे है। इसे समझने के लिए संसार व सांसारिकता के गणितीय समीकरणों से ऊपर उठकर आध्यात्मिक काव्य की रहस्यमयता में प्रवेश करना पड़ेगा। ऐसा किए बिना इस सूत्र का सत्य बोध संभव नहीं है। अपनी आध्यात्मिक वार्ताओं व संगोष्ठियों में परमपूज्य गुरुदेव कहा करते थे—"**आध्यात्मिकता जीवन का शीर्षासन है।**" उनका यह कथन थोड़ा अटपटा-सा है। सुनने में संत कबीर की उलटबाँसी जैसा लगता है। अब भला

यह भी कोई बात हुई कि अपने जीवन को उलटा कर दो, उसे शीर्षासन करवा दो तो आध्यात्मिकता सध जाएगी, सिद्ध हो जाएगी। लेकिन यदि इस पर विचार किया जाए, इस कथन की गहनता में प्रविष्ट हुआ जाए तो इसमें निहित मंतव्य स्वतः स्पष्ट हो जाएगा। बात इतनी-सी है कि हमारा सामान्य व सांसारिक जीवन राग, द्वेष व चतुराई के रास्ते पर चलता है। संसार में सफलता पाने के लिए जीवन में अनेकों छल-कपट व कुटिल षड्यंत्र करने पड़ते हैं, लेकिन ये बातें आध्यात्मिक जीवन में स्वीकार नहीं हैं, इसके लिए तो उलटे को उलटकर सीधा करना पड़ेगा। छोड़नी पड़ेंगी सांसारिक राहें व बातें, सांसारिकता के तौर-तरीके। जीवन का करना होगा शीर्षासन।

सांसारिक जीवन में हर कदम पर मन कलुषित होता है। प्रत्येक सांसारिक सफलता के लिए मन को मैला करना पड़ता है; जबकि आध्यात्मिक जीवन के लिए इससे उलटी स्थिति जरूरी है। आध्यात्मिक जीवन के लिए तो हर कदम पर मन को परिष्कृत करना पड़ेगा। मन के परिष्कार की यही निरंतरता उसे प्रकाशित कर देती है। इस प्रकाशित अवस्था में प्रकट होती है प्रतिभा। यहाँ पर प्रतिभा का अर्थ बौद्धिक तीव्रता या कुशलता नहीं है। यहाँ पर तो यह कहा जा रहा है कि जो व्यक्ति परिपूर्ण ध्यान को उपलब्ध हो जाता है, परिपूर्ण जागरूकता, होश को उपलब्ध हो जाता है, परिपूर्ण अंतरस्पष्टता, निर्दोषता को उपलब्ध हो जाता है, वह व्यक्ति प्रतिभा को उपलब्ध हो जाता है। प्रतिभा न तो बुद्धि है और न अंतर्बोध या इन्ट्यूशन है। यह तो बोध की प्रकाशित अवस्था है। बुद्धि है सूर्य, अंतर्बोध है चंद्र, प्रतिभा का प्रकाश इन दोनों का अतिक्रमण कर लेता है।

इसके लिए ही तो शास्त्र कहते हैं—**'न तद्भासते सूर्य न शशांको'** अर्थात यहाँ सूर्य व चंद्र का प्रकाश नहीं है। यहाँ जो आत्मा का प्रकाश है, समाधि चेतना का प्रकाश है, उसमें सब कुछ देखा व जाना जा सकता है। इससे प्राप्त होने वाली दृष्टि साधक को सर्वज्ञाता बनाती है। अभी तक देखने-सुनने व समझने के लिए इंद्रियों की आवश्यकता का अनुभव होता था, लेकिन मन की प्रकाशित अवस्था में बिना इंद्रियों की सहायता के [illegible] सुनना-समझना संभव हो जाता है। पश्चिमी जगत में परामनोविज्ञान के प्रयत्न अब इसे संभव मानने लगे हैं। 'मैन दि अननोन' पुस्तक के लेखक अलेक्सस कैरल ने अपने कई प्रदर्शनों में इस क्षमता को प्रदर्शित व प्रमाणित किया। विज्ञानवेत्ताओं ने उनके ऐसे प्रदर्शनों के वैज्ञानिक परीक्षण भी किए और अपने निष्कर्ष में उन्होंने बताया कि कैरल का दावा शत-प्रतिशत सत्य है।

जिस सत्य की आहट को कैरल ने प्रदर्शित किया, महर्षि पतंजलि उसके संपूर्ण विकसित स्वरूप की बात करते हैं। वे कहते हैं—(१) प्रातिभ ज्ञान से अर्थात प्रकाशित मन की प्रतिभा से भूत, भविष्य व वर्तमान तथा सूक्ष्म, ढकी हुई व दूरदेश में स्थित वस्तुएँ प्रत्यक्ष हो जाती हैं। (२) श्रावण शक्ति के विकसित होने से दिव्य शब्द सुनने की शक्ति आ जाती है। (३) वेदन शक्ति के जागरण से दिव्यस्पर्श का अनुभव करने की शक्ति आ जाती है। (४) आदर्श शक्ति के प्रभाव से साधक दिव्यरूप का दर्शन कर सकता है। (५) आस्वाद शक्ति के द्वारा योगसाधक दिव्यरस का अनुभव प्राप्त करने लगता है एवं (६) वार्ता शक्ति के द्वारा दिव्यगंध का अनुभव स्वतः प्राप्त होने लगता है। ये सभी छह शक्तियाँ क्रमशः मन व पाँच ज्ञानेंद्रियों की सामान्य शक्तियों का विकसित व प्रकाशित रूप हैं। योग-साधना करते हुए परिष्कृत व प्रकाशित मन अपने साथ इंद्रियों का भी रूपांतरण कर लेता है। तब इन शक्तियों का विकास स्वतः हो जाता है। यह मन के परिष्कार की स्वतः परिणति है।

नास्त्ययज्ञस्य लोको वै, नायज्ञो विदन्ते शुभम्।
अयज्ञो न च पूतात्मा, नश्यतिच्छिन्नपर्णवत्॥

यज्ञ न करने वाला मनुष्य लौकिक और पारलौकिक सुखों से वंचित रह जाता है। यज्ञ न करने वाले की आत्मा पवित्र नहीं होती, वह पेड़ से टूटे हुए पत्ते की तरह नष्ट हो जाता है।

►समूह साधना वर्ष◄

श्रीराम भक्ति की साधना — ८६

ऋषि वसिष्ठ ने कही जय-विजय की कथा

ब्रह्मर्षि वसिष्ठ व अंजनीनंदन हनुमान मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम एवं देवाधिदेव महादेव का मिलन देखकर विभोर थे। अद्‌भुत आध्यात्मिक अनुभूति हुई दोनों को। ऋषि वसिष्ठ सोचने लगे हरि व हर भले ही किसी भी रूप में क्यों न हों, पर इनकी एकात्म लयबद्धता कभी क्षीण नहीं होती। नारायण व शिव अपने मूल स्वरूप में हों, श्रीराम व सदाशिव का परस्पर मिलन हो या फिर श्रीराम रुद्रावतार हनुमान के साथ हों, इनकी आंतरिक एकात्मता, परस्पर की लयबद्धता सदा एक-सी रहती है। मनोहारी होता है—इनका हर रूप।

ऋषि वसिष्ठ कुछ और अधिक सोच पाते, इससे पहले मुस्कान के साथ महादेव एक विशाल वटवृक्ष की छाँह में बैठ गए। पास में ही उन्होंने अपना त्रिशूल गाड़ दिया। इसी त्रिशूल में बँधा था डमरू। जिसके दिव्य नाद से देवभाषा के स्वर-व्यंजन प्रकट हुए, साथ ही प्रकट हुए संगीत के सप्त स्वर। उनके हाथों में थमा रहने वाला त्रिशूल इस सत्य का साक्षी था कि प्रकृति के तीनों गुण सत, रज व तम, सदा-सर्वदा त्रिभुवनपति महादेव के नियंत्रण में हैं। वे प्रकृति व उसके तीनों गुणों के नियंत्रक हैं और प्रकृति के पार व परे रहने वाले त्रिगुणातीत भी।

अद्‌भुत छवि थी भोलेनाथ की, आश्चर्यकारी आध्यात्मिक आभा उनके सब ओर व्याप्त हो रही थी। अभी वे श्रीराम में रम रहे थे और श्रीराम उनमें। तभी महादेव ने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम से कहा—"हे श्रीराम! आपको दशानन रावण के कारण यहाँ आना पड़ा। आगे भी आपको अनेकों कष्ट उठाने पड़ेंगे। कहीं न कहीं आपके इन कष्टों का कारण मैं भी हूँ। मेरे वरदानों ने ही उसे शक्तिसंपन्न बनाया है। उसकी सामर्थ्य व इस सामर्थ्य के कारण हुए अनाचारों का कारण भी मैं हूँ।"

भगवान शिव के ये वचन सुनकर श्रीराम बोले—"ऐसा न कहें भगवन्! आप तो सर्वज्ञ हैं, आप जानते हैं कि किसी भी व्यक्ति के दुष्कर्मों का कारण होती है उसकी दूषित प्रकृति व दूषित कृतियाँ। तप का सदुपयोग तो इनका परिष्कार है। दशानन ऐसा न कर सका। उसने अपने तप को अपनी अहंता के पोषण में लगाया। यह उसकी दुर्मति से उपजा दुर्भाग्य रहा।" जहाँ तक संबंधों का प्रश्न है तो दशानन जितना आपका है, उससे कहीं अधिक मेरा है। सच कहें तो हम दोनों का है। इसलिए उसके उद्धार का दायित्व भी हम दोनों का है। समय आने पर हम मिलकर इस दायित्व को पूर्ण करेंगे।"

जब श्रीराम ऐसा कह रहे थे तो हनुमान चकित भाव से उन्हें देख रहे थे। उनके मन में श्रीराम के वचनों में निहित सत्य को जानने-समझने की तीव्र जिज्ञासा अंकुरित होने लगी। इस जिज्ञासा की अनुभूति कर भगवान-भवानीपति हँसते हुए बोले—"ब्रह्मर्षि वसिष्ठ हनुमान की जिज्ञासा का समाधान करेंगे।" श्रीराम ने भी भोलेनाथ के कथन का मौन अनुमोदन किया।

हरि व हर की सम्मति-सहमति व उनसे सन्मति पाकर ऋषि वसिष्ठ ने हनुमान को संबोधित करते हुए कहा—"हे अंजनीपुत्र! यह कथा कल्पों पुरानी है। कल्प भेद के अवांतर में इसमें कई क्रम-अनुक्रम भी जुड़े। आज इस त्रेतायुग में जो रावण-कुंभकर्ण हैं, कभी पूर्व में भगवान श्रीहरि के द्वारपाल जय-विजय थे। उन्हें भगवान श्रीहरि का नित्य सान्निध्य व सतत संरक्षण प्राप्त था। इस सान्निध्य व संरक्षण में उनके समर्पण को समृद्ध होना था, पर महामाया के प्रभाव से उनमें अहंता अंकुरित हो गई। अपने स्वजनों के गर्व का दमन करने वाले श्रीहरि ने तत्क्षण लीला रची। इस लीला की सूत्र-संचालक बनीं स्वयं योगमाया।"

ऋषि वसिष्ठ आगे बोले—"उनके आकर्षण में आबद्ध होकर उसी समय सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के चारों मानस पुत्र सनक, सनंदन, सनत्‌कुमार व सनातन श्रीहरि के दर्शन हेतु वैकुंठ पहुँच गए। ये चारों कुमार परम भगवद्‌भक्त हैं व सदा पाँच वर्ष की वय में ही रहा करते हैं। इन्होंने अपने प्रकट होने के बाद भगवान श्रीनारायण से वरदान माँगा था—"हे नारायण! आयु के पाँच सालों के बाद शरीर व मन में अनेकों विकार पनपने लगते हैं। जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे, लोभ-मोह-मद, काम-क्रोध व

मत्सर आ जाते हैं। इसलिए भगवन् आपसे मेरी यह याचना है कि हम चारों भाई हमेशा ही पाँच वर्ष के बने रहें। साथ ही सदा-सर्वदा तप, स्वाध्याय व ईश्वरभक्ति में निरत रहें। उनकी इस सात्त्विक इच्छा को श्रीहरि ने एवमस्तु कहकर पूर्ण किया।''

महर्षि वसिष्ठ ने थोड़ा रुककर कहा—''योगमाया ने इन्हीं चारों कुमारों को श्रीहरि की लीला में निमित्त बनने के लिए आकर्षित किया। योगमाया से प्रेरित होकर चारों कुमार वैकुंठ के द्वार पर आ पहुँचे। द्वार पर जय-विजय द्वारपाल के रूप में थे। उन्होंने जय-विजय से श्रीहरि के दर्शनों की इच्छा प्रकट की। इस पर श्रीहरि के सान्निध्य व संरक्षण को प्राप्तकर उन्मत्त हुए जय व विजय उनको बालक समझकर परिहास करने लगे। ब्रह्मर्षियों से भी पूज्यनीय इन चारों कुमारों ने काफी देर तक इनके असहनीय व्यवहार को सहन किया, लेकिन जय व विजय को इस पर भी होश न आया। उन्होंने सभी मर्यादाओं का उल्लंघन करते हुए इनके उदर में अपने दंड को तेजी से चुभा दिया और बोले—''मूर्ख बालको! भगवान श्रीहरि तुमसे कभी नहीं मिलेंगे। तुम सब यहाँ से प्रस्थान करो।''

ऋषिवर का कथा-प्रसंग अभी शेष था और वे बोले-''उनके इस अमर्यादित व्यवहार पर कुपित होते हुए चारों ब्रह्मकुमारों ने कहा—'भगवान श्रीहरि का सान्निध्य व संरक्षण भी तुम्हें विवेक न दे सका। यहाँ आकर भी तुम तमोगुण से घिरे हो। इसलिए हमारा शाप है कि तुम तमोगुणप्रधान राक्षस हो जाओ।' ब्रह्मकुमारों के इस शाप ने जय-विजय को भयभीत कर दिया। उन्होंने व्याकुल भाव से भगवान श्रीहरि को पुकारा। उनकी पुकार सुनकर श्रीहरि द्वार पर आए और ब्रह्मकुमारों को प्रणाम करते हुए उनसे जय-विजय के लिए क्षमा-याचना की। श्रीहरि के इस व्यवहार से जय-विजय को ब्रह्मकुमारों के साथ विनम्रता की महिमा का बोध हुआ, परंतु भगवान की रहस्यमय लीला का कुछ अंश अभी भी शेष था।

''इसे जानते हुए ब्रह्मकुमारों ने श्रीहरि को प्रणाम करते हुए कहा—भगवन्! आप परम भक्तवत्सल हैं। आपके भक्त आपको अतिशय प्रिय हैं। आपके इन द्वारपालों को आपकी कृपा की अनुभूति हो, इसके लिए इन्हें एक अवसर का दान दे रहे हैं। ये तमोगुणप्रधान तो अवश्य होंगे, पर इन्हें रुद्रगणों में स्थान मिलेगा। यदि इन्होंने किसी मुनि का अपमानजनक परिहास न किया तो इनका शिवकृपा से कल्याण होगा। यदि फिर से इन्होंने किसी मुनि का अपमान किया तो ये अवश्य राक्षस होंगे। तब इनका उद्धार आपके एवं भगवान शिव के द्वारा ही हो सकेगा।''

ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने इस कथा के सूत्र को आगे बढ़ाते हुए कहा—''ब्रह्मकुमारों के शापवश जय व विजय रुद्रगण बनें। यह इनके लिए प्रायश्चित का अवसर था। भगवान भोलेनाथ के सान्निध्य में ये श्रेष्ठतम साधना कर सकते थे और समाधान प्राप्त कर सकते थे, लेकिन **'हरि माया का अमित प्रभावा'** भगवान श्रीहरि की माया का प्रभाव अमित है। जब जय-विजय रुद्रगण के रूप में थे, उसी समय देवर्षि नारद को मोह हो गया। उन्हें अपने तप व वैराग्य का अहं हो गया। कामदेव और उसकी सेना की पराजय को वह अपना कृतत्व समझ बैठे। तभी हरि माया ने ऐसी लीला रची कि वह राजा सीलनिधि की पुत्री बिस्वमोहनी के साथ विवाह की इच्छा करने लगे। भगवान नारायण से उन्होंने इसके लिए सहायता भी माँगी। नारायण ने उनका परम कल्याण करने का वचन दिया।

त्वं नो मेधे प्रथमा।
सद्बुद्धि ही संसार में सर्वश्रेष्ठ है।

इस वचन का मर्म देवर्षि समझ न सके और बिस्वमोहनी के विवाहमंडप में पहुँच गए। इस विवाहमंडप में ये रुद्रगण भी थे। अब तक ये ब्रह्मकुमारों की चेतावनी भूल चुके थे।

''अपनी परिहासप्रिय वृत्ति के कारण ये देवर्षि नारद की हँसी उड़ाने लगे। मोहवश देवर्षि को अपना परिहासपूर्ण अपमान समझ नहीं आया। उस समय माया के प्रभाव से सम्मोहित वह एक ही विचार कर रहे थे—हे विधाता! कैसे यह सुंदर स्त्री मुझे प्राप्त हो। पर ऐसा हो न सका, त्रिभुवन सुंदरी बिस्वमोहनी त्रिभुवनपति नारायण की हो गई। तब देवर्षि का विफल काम क्रोध बन गया और उन्होंने इन रुद्रगणों को शाप दिया—

होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥

अर्थात—तुम दोनों कपटी-पापी राक्षस बनो। हमारी हँसी उड़ाई सो उसका फल प्राप्त करो, फिर किसी दूसरे मुनि की हँसी उड़ाना, तब उसका फल पाना। वही रुद्रगण इस समय लंका में रावण-कुंभकर्ण हैं।''

भगवान के अनंत विस्तार के आगे नतमस्तक हैं अर्जुन

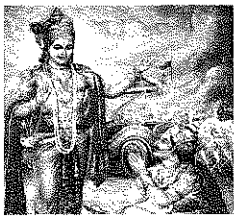

(श्रीमद्भगवद्गीता के विश्वरूपदर्शनयोग नामक एकादश अध्याय की अठारहवीं किस्त)

[एकादश अध्याय की सत्रहवीं किस्त में पैंतीसवें व छत्तीसवें श्लोक की व्याख्या की गई थी। इनमें से पैंतीसवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण के वचनों को सुनकर अर्जुन की स्थिति का वर्णन करते हुए संजय महाराज धृतराष्ट्र से कहते हैं—''महाराज! पांडुपुत्र अर्जुन योगेश्वर श्रीकृष्ण का विराट रूप देखकर उनके सामने काँपते हुए, हाथ जोड़े नमस्कार करते हुए, भयभीत हो प्रणाम कर रहे हैं। साथ ही वह गद्गद भी हैं। विचित्र व विलक्षण स्थिति है उनकी। इसका कारण है वह अनुभूति जो उन्होंने पाई। उन्होंने श्रीभगवान के विराट रूप में जीवन की समष्टि को देखा। लोक-लोकांतर के वासियों को, जीवन के परस्पर विरोधों को भगवान में समन्वित देखा। इस दृश्य ने उन्हें चकित किया व भयभीत भी। साथ ही उन्होंने भगवान की महिमा को जाना। इसे जानकर वह गद्गद हुए।''

संजय द्वारा दिए गए इस विवरण के बाद अगले यानी कि छत्तीसवें श्लोक में अर्जुन स्वयं कहते हैं—''हे हृषीकेश! हे अंतर्यामिन्!! आपके नाम व प्रभाव के कीर्तन से जगत अति हर्षित होता है और अनुराग को प्राप्त होता है तथा भयभीत हुए राक्षसगण दिशाओं में भागते हैं और सब सिद्धगणों के समुदाय नमस्कार करते हैं।'' बड़ा अद्भुत वर्णन है यह। भगवान तो एक ही हैं, पर उन्हें देखने वालों की प्रतिक्रियाएँ भिन्न हैं। श्रीभगवान तो सर्वव्यापी व गुणातीत हैं, परंतु त्रिगुणमयी प्रकृति में वश हुए जीव गुणमय हैं। जिनमें सत्त्वगुणप्रधान है, वे प्रभु को देखकर हर्षित व अनुरागपूर्ण हैं। जिनमें रजोगुण की प्रधानता है, वे उन्हें नमस्कार कर रहे हैं और जो तमोगुणप्रधान हैं, वे श्रीभगवान को देखकर भयभीत हैं, उनके पाँव नहीं ठहर रहे हैं।]

इतना कहकर अर्जुन श्रीभगवान के महत्त्व का वर्णन करते हुए आगे कहते हैं—

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्॥३७॥

शब्दविग्रह= कस्मात्, च, ते, न, नमेरन्, महात्मन्, गरीयसे, ब्रह्मणः, अपि, आदिकर्त्रे, अनन्त, देवेश, जगन्निवास, त्वम्, अक्षरम्, सत्, असत्, तत्परम्, यत्।

शब्दार्थ= हे महात्मन् (**महात्मन्**)!, ब्रह्मा के (**ब्रह्मणः**), भी (**अपि**), आदिकर्त्ता (**आदिकर्त्रे**), और (**च**), सबसे बड़े (**गरीयसे**), आपके लिए ये (**ते**), कैसे (**कस्मात्**), नमस्कार न करें- क्योंकि (**न, नमेरन्**), हे अनंत! (**अनन्त**) हे देवेश! (**देवेश**) हे जगन्निवास! (**जगन्निवास**) जो (**यत्**), सत् (**सत्**), असत् और (**असत्**), उनसे परे (**तत्परम्**), अक्षर अर्थात सच्चिदानंद ब्रह्म हैं (**अक्षरम्**), वह (**तत्**), आप ही हैं (**त्वम्**)।

योगेश्वर श्रीकृष्ण के अनन्य सखा अर्जुन, भावों से परिपूर्ण हैं। उनकी चेतना सीमातीत हो गई है। सभी सीमाएँ टूट गई हैं। उन्होंने जो भी अनुभव किया, उसे वह व्यक्त करना चाहते हैं। पर करें कैसे? शब्द तो छोटे हैं, अनुभूति बड़ी है, व्यापक है। साक्षात् विराट पुरुष का साक्षात्कार किया है उन्होंने। अब वह कहना चाहते हैं प्रभु की महिमा को। इसलिए भावविभोर वह कह रहे हैं। उपनिषद् कहते हैं कि परात्पर चेतना मन व वाणी के पार है। हालाँकि उसके बारे में जब कहा जाता है तो मन व वाणी ही माध्यम बनते हैं। इसीलिए अनुभूति तो व्यापक होती है, पर अभिव्यक्ति सांकेतिक हो जाती है। यह

कहना, यह बोलना कुछ-कुछ बच्चे के बोलने के जैसा है। माँ की कोख से बाहर आने के बाद बच्चे ने बाहर का व्यापक संसार देखा। अनगिनत चीजों की अनुभूति पाई। बड़ी मुश्किल से थोड़ा बोलना सीखा। अब उसके पास कहने को बहुत ज्यादा है, लेकिन शब्द थोड़े हैं। उन्हीं में काम चलाना है। बच्चा अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति सबसे पहले अपनी माँ से करता है। उसके कम शब्दों को, उसके तुतलाते बोलों को माँ आसानी से समझ लेती है।

माँ के अलावा दूसरों को उसका बोलना ठीक से समझ नहीं आता। अटपटा लगता है उन्हें, लेकिन माता को अपने बच्चे के इन बोलों पर बड़ा प्यार आता है। बड़ी अनन्यता, एकात्मता अनुभव होती है माँ को। अर्जुन भी इस प्रकार भगवान से कह रहे हैं—अपने अनुभव के बारे में। अर्जुन शास्त्रों के महान पंडित हैं। उन्होंने ऋषि व्यास, ऋषि धौम्य, पितामह भीष्म जैसे ज्ञानियों का सान्निध्य पाया है, फिर भी आज उन्हें अपनी बात कहने में कठिनाई हो रही है। इसी अनुभूति के साथ वह कह रहे हैं—"हे महात्मन्! आपको सभी कैसे न प्रणाम करें। आप ही तो सबके प्रणम्य हैं।" वह श्रीभगवान को महात्मा कहकर संबोधित कर रहे हैं; क्योंकि भगवान एक साथ देहधारी हैं और देहातीत भी। सामान्य क्रम में देह तो आत्माएँ धारण करती हैं। जिन आत्माओं ने आज तक, अब तक देह धारण की है, श्रीकृष्ण उनमें सबसे महान हैं।

अर्जुन कहते हैं हे प्रभु! यह समस्त सृष्टि-संरचना ब्रह्मा ने रची है। शास्त्र, संत, ऋषि व तत्त्ववेत्ता सभी यही कहते हैं। जिन ब्रह्मा ने यह संसार रचा, उनकी रचना करने वाले आप ही हैं। इसलिए आप सबसे बड़े हैं। 'भगवान सबसे बड़े' यह सत्य है, परंतु उनकी बड़ाई को, उनके बड़प्पन को नापा नहीं जा सकता है। कोई मापदंड, कोई पैमाना ऐसा नहीं है, जो उन्हें नाप सके। हाँ! इतना अवश्य है कि उन्हें नापने में सारे पैमाने, सभी मानक छोटे हो जाते हैं। कहीं कोई उनका ओर-छोर नहीं मिलता। कहीं कोई उनका आदि-अंत प्राप्त नहीं होता है।

इसलिए अर्जुन उन्हें संबोधित करते हैं कि हे अनंत! कोई सीमा नहीं है प्रभु की। दिव्यता की सघनता है उनमें, देवों के स्वामी हैं वे। तभी तो अर्जुन कहते हैं हे देवेश! सारी देवशक्तियाँ, सभी दिव्यताएँ उनमें वास करती हैं। तभी तो वे देवेश हैं। इतना ही नहीं है, समस्त जगत उनमें निवास करता है। उनसे बाहर इस जगत का कोई अस्तित्व ही नहीं है। इसके बावजूद वे समस्त जगत में व्याप्त हैं। तभी तो अर्जुन उन्हें हे जगन्निवास! कहकर संबोधित करते हैं। ऐसा कुछ नहीं है, जो वे नहीं हैं। वे सत् हैं और असत् भी। अर्थात जो है, वह भी वे ही हैं और जो नहीं है, वह भी वे ही हैं।

सामान्यतः अपनी सीमित दृष्टि के कारण जो हमारी अनुभूति में आता है, उसे हम सत् मान लेते हैं, जो हमारी अनुभूति में नहीं आता, उसे हम असत् मान लेते हैं, परंतु परमात्मा में तो सभी हैं। इसीलिए परमेश्वर सत् व असत् दोनों हैं। उनका न तो क्षय है और न क्षरण। वे जो हैं, जैसे हैं, सदा-सदा वैसे ही रहेंगे। इसी कारण वे अक्षर हैं। प्रकृति के सभी पदार्थ कालक्रम में क्षय व क्षीण होते हैं, परंतु भगवान तो काल से परे हैं, प्रकृति के अधीन न होते हुए भी उससे पार हैं, इसीलिए वे अक्षर हैं। उनमें किसी तरह का कोई परिवर्तन या क्षरण नहीं है। इसीलिए तो वे सनातन, शाश्वत, सच्चिदानंद ब्रह्म हैं। उनकी न व्याख्या संभव है और न विवेचना, बस, भावों की अपूर्ण-अधूरी अभिव्यक्ति संभव है।

इतना कहने के बाद अर्जुन श्रीभगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं—

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप॥ ३८॥

शब्द विग्रह= त्वम्, आदिदेवः, पुरुषः, पुराणः, त्वम्, अस्य, विश्वस्य, परम्, निधानम्, वेत्ता, असि, वेद्यम्, च परम्, च, धाम, त्वया, ततम्, विश्वम्, अनन्तरूप।

शब्दार्थ= हे प्रभो! आप (**त्वम्**), आदिदेव और (**आदिदेवः**), सनातन (**पुराणः**), पुरुष हैं (**पुरुषः**), आप (**त्वम्**), इस (**अस्य**) जगत के (**विश्वस्य**), परम (**परम्**), आश्रय (**निधानम्**) और (**च**), जाननेवाले (**वेत्ता**), तथा (**च**), जानने योग्य और (**वेद्यम्**), परम (**परम्**), धाम (**धाम**), हैं (**असि**), हे अनंतरूप! (**अनन्तरूप**), आपसे यह सब (**त्वया**), जगत (**विश्वम्**), व्याप्त अर्थात परिपूर्ण हो रहा है (**ततम्**)।

अर्जुन के ये वचन भगवान की स्तुति हैं, साथ में अनुभूति की अभिव्यक्ति भी। जो भी कह रहे हैं अर्जुन, जो कुछ भी बोल रहे हैं, वह सब कुछ उनकी कल्पना न होकर प्रगाढ़ अनुभव है। भगवान की कृपा से—परम गुरु

श्रीकृष्ण की कृपा से अर्जुन ने चेतना के परम अनुभव को पाया है। इसे पाकर वे भयभीत हैं और गद्‌गद भी। स्वयं को धन्यभागी महसूस कर रहे हैं। बड़ा अनूठा, अद्वितीय अवसर उन्हें मिल सका है। विराट के, परम पुरुष के दर्शन हो सके उन्हें। जहाँ न कोई बंधन है, न कोई सीमा। जहाँ जानने वाला और जाना जाने वाला एक हो जाते हैं। जहाँ सृष्टि और सृष्टि के निर्माता पीछे छूट जाते हैं। अनुभव होता है बस, मूल आश्रय और परमधाम का।

यह अनुभव प्राप्त कर अर्जुन अपने धन्य भाग को प्रकट कर रहे हैं। वह कह रहे हैं श्रीकृष्ण से—"हे प्रभु! आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं। आप इस जगत के परम आश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य व परम धाम हैं। हे अनंत रूप! आपसे यह सब जगत व्याप्त और परिपूर्ण है।" वह बहुत कुछ कहना चाहते हैं, परंतु उनके भाव सीमित शब्दों में समा नहीं रहे हैं। भावों की बहुलता के कारण उनकी वाणी प्रेम में लपेटी, अटपटी-सी हो गई है। बार-बार नमन कर रहे हैं वे श्रीकृष्ण को। सामान्य बुद्धि के व्यक्ति को यह लग सकता है कि इतनी बार नमन करने की, नमस्कार करने की जरूरत क्या है? नमस्कार तो एक दफा ही पर्याप्त है। बात तो ठीक है, पर अर्जुन का मन नहीं भर रहा। उन्हें लग रहा है कि जो कुछ उन्हें मिला है, उसका अनुग्रह मैं मान भी न पाऊँगा। उससे उऋण होने की कोई व्यवस्था नहीं है। उनके अनुग्रह को सही रीति से अनुभव कर पाना, उसे बता पाना भी मुश्किल है।

शास्त्र कहते हैं, ज्ञानीजन कहते हैं कि पिता के ऋण से मुक्त हो पाना कठिन है। माँ के ऋण से मुक्त हो पाना उससे भी कठिन है, लेकिन यह सब असंभव नहीं है। इसको संभव बनाने के लिए शास्त्र ज्ञानियों ने अनेक तरह की व्यवस्थाएँ दी हैं। पितृपक्ष में श्राद्ध का विधान, तर्पण का विधान इसी का स्वरूप है। लेकिन गुरु के ऋण से मुक्त हो पाना तो कभी संभव नहीं है। ऐसा कोई विधान नहीं है, जो गुरु के ऋण से मुक्त करने की व्यवस्था दे सके। ऐसे उपाय को, ऐसे विधान को, गुरु से उऋण होने की व्यवस्था के बारे में किसी ने कुछ भी नहीं कहा है। शास्त्र, संत, ज्ञानी सभी मौन हैं इस बारे में।

ऐसा इसलिए है; क्योंकि जो अनुभव गुरु के माध्यम से उपलब्ध होता है, जो अनुभव योगेश्वर श्रीकृष्ण के माध्यम से अर्जुन को मिल पाया, उस अनुभव के लिए कोई भी मूल्य नहीं चुकाया जा सकता। संभव भी नहीं है, इसका कोई मूल्य चुका पाना। कुछ भी नहीं दिया जा सकता है, इसके लिए। सच तो यह भी है इस बारे में कि देने वाला अब बचा भी कहाँ? अब कौन दे? और क्या दे? अब तो जो भी दिया जाए सब छोटा है, सब बेकार है। अब तो सिर्फ नमस्कार ही रह जाता है। नमन ही शेष रहता है अब। केवल श्रद्धाभाव, अहोभाव शेष बचता है अब।

हमारे देश की संस्कृति में, भारतीय संस्कृति में हमने गुरु को जो इतना आदर दिया है, वह किसी और कारण से नहीं है; क्योंकि अन्य कोई उपाय भी तो नहीं है, कृतज्ञता व्यक्त करने का। गुरु को हम दे भी क्या सकते हैं। कुछ दें भी तो वह सब व्यर्थ है, बेकार है। जो हम देंगे उन्हें, वह होगा तो संसार का हिस्सा ही; जबकि गुरु तो ऐसे अनूठे, इतने अतुलनीय हैं, जो हमें संसार से पार ले गए। उस संसार से पार ले जाने वाले अनुभव के लिए, संसार का कुछ भी दें, यहाँ तक कि समूचा संसार भी दे डालें उन्हें, तो भी निरर्थक है, व्यर्थ है, बेमानी है। ऐसे में

ध्यान का अर्थ है—अपनी मानसिकता को लक्ष्य विशेष पर अविचल भाव से केंद्रीभूत किए रहना।

हम क्या कर सकते हैं, बस, एक अनुग्रह-भाव ही शेष रह जाता है। केवल श्रद्धा ही शेष बचती है, जो हम अर्पित कर सकते हैं, अपने गुरु के चरणों में।

अर्जुन यही कर रहे हैं इस समय। वह भगवान से कह रहे हैं—"हे आदिदेव! हे सनातन पुरुष!! भगवान के सिवा, अपने गुरु के सिवा देवत्व का आदिस्रोत, जीवन की सनातनता, शाश्वतता और अन्यत्र कहाँ दीख सकती है।" इस जगत में उनके सिवा अन्य कोई परम आश्रय कहीं नहीं। वही हैं जानने वाले और वही हैं जानने योग्य, वही हैं परम धाम। इस जगत में जो भी अनंत-अनंत रूप हैं, सब उन्हीं के हैं। उनकी चेतना के सिवा अन्य कुछ भी नहीं है यहाँ। इसलिए उन्हें नमन करने के अलावा, उन्हें श्रद्धा अर्पित करने के अलावा कोई दूसरा उपाय नहीं है।

अर्जुन भावनाओं को इसी रूप में प्रकट कर रहे हैं। यहाँ एक बात कह देने का मन है कि इतनी श्रद्धा, इतना समर्पण, इतना नमन अपने गुरु को, केवल अपने

इस देश भारत की ही विशेषता है। यहीं की विशिष्टता है। हाँ, केवल भारत देश दुनिया में अकेला देश है, जहाँ गुरु के चरणों में झुकने की लंबी परंपरा है। सुदीर्घ धारा है गुरु को नमन करने की। अगर कहीं अन्यत्र यह भाव दीखता भी है, तो निस्संदेह भारत से गया है। पूरे विश्व में कहीं और गुरु के चरणों में सिर रखकर अपने को सब भाँति समर्पित करने की कोई धारणा नहीं है।

इसीलिए पश्चिम के लोगों को भारत की यह बात अटपटी लगती है। उन्हें खटकती है गुरु के प्रति इतनी श्रद्धा। श्रद्धा की यह प्रगाढ़ता उन्हें अंधापन लगती है। उनको तर्कहीनता नजर आती है इसमें; क्योंकि किसी के चरणों में सिर रखना और किसी के प्रति सब कुछ समर्पित कर देना अजीब-सा लगता है। ऐसा लगता है यह तो एक तरह से मानव प्रतिष्ठा हो गई। मनुष्य की पूजा हो गई। उनका ऐसा लगना कुछ गलत भी नहीं है; क्योंकि उन्हें जो दिखाई पड़ रहा है, वह मनुष्य ही तो है।

लेकिन अगर किसी शिष्य को विराट की थोड़ी-सी झलक, थोड़ी-सी किरण मिली हो किसी के द्वारा, तो अब वह क्या करे? वह कहाँ जाए? वह किस तरह अपनी कृतज्ञता जताए? कैसे अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दे। उसके पास एक ही उपाय है कि वह सब तरह से समर्पित हो जाए। अर्जुन यही कर रहे हैं। वह अपने प्रत्येक शब्द से भगवान की महिमा का गान कर रहे हैं। वह बखान कर रहे हैं—भगवान के अनंत विस्तार का। अपने हर कथन से बस, अर्जुन अपनी श्रद्धा दोहरा रहे हैं, जता रहे हैं अपने अहोभाव को, जता रहे हैं वह अपनी कृतज्ञता को।

जर्मनी के डुसलडर्फ नगर में बच्चों के एक चिकित्सक रहा करते थे। उनका नाम था—डॉ० फिट्ज टालबोट। उनकी ख्याति दूर-दूर तक थी। उनके यहाँ जब भी कोई असाध्य रोग का इलाज कराने आता और उस बच्चे पर कोई दवा काम न करती प्रतीत होती तो वे एक परची पर कुछ लिखकर अपने अस्पताल की सबसे पुरानी नर्स को दे देते। नर्स उस पर लिखे निर्देश का पालन करती और आश्चर्यजनक रूप से वह बच्चा स्वस्थ हो जाता था।

अस्पताल के अन्य चिकित्सकों के मन में उस गुप्त दवा को जानने की बड़ी उत्सुकता थी। एक दिन जब उन्होंने नर्स को डॉक्टर टालबोट की लिखी परची ले जाते देखा तो उन्होंने उसके हाथ से वह परची ले ली। उन्हें यह पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उस कागज पर डॉ० टालबोट ने मात्र दो शब्द लिखे थे और वे थे—'दादी माँ।' यह पढ़कर चिकित्सकों की उत्सुकता और बढ़ गई। नर्स उनकी उत्सुकता समझ गई और उन्हें एक कमरे में ले गई, जहाँ एक बूढ़ी महिला बैठी हुई थी। जिस बच्चे के लिए डॉ० टालबोट ने वह परची लिखी थी, वह बूढ़ी महिला उस बच्चे को अपनी गोद में प्यार से चिपकाकर बैठी थी। नर्स उन चिकित्सकों को यह दृश्य दिखाकर बोली—''जब किसी बच्चे पर कोई दवाई काम नहीं करती तो डॉ० टालबोट उसे यहाँ भेजते हैं। यह बूढ़ी माँ इन बच्चों को उनकी अपनी दादी की तरह प्यार देती हैं और यही प्यार उस बच्चे का जीवन बचा लेता है।'' सही ही है कि भावनाएँ सच्ची हों, तो दुनिया के सारे रोग भाग जाते हैं।

समय रहेगा साक्षी

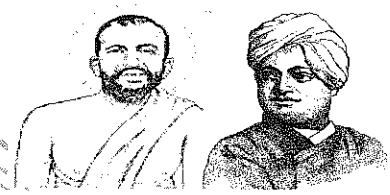

विगत अंक में आपने पढ़ा कि संत विनोबा भावे पूर्वी पाकिस्तान की यात्रा कर शांतिपुर पहुँचे थे। परमपूज्य गुरुदेव भी उन दिनों गायत्री महायज्ञ कराने हेतु शांतिपुर में ही थे, अतः वे संत विनोबा जी से मिलने पहुँचे। पूज्य गुरुदेव को देखते ही विनोबा जी अपने स्थान पर खड़े हो गए और गुरुदेव द्वारा लिखे गए आर्ष साहित्य के सेट को अपने मस्तक से लगा लिया। विनोबा जी से हुई यादगार भेंट के उपरांत गुरुदेव मथुरा वापस पहुँचे तो कुछ कार्यकर्त्ताओं ने क्षेत्रों में चल रहे गायत्री परिवार के केंद्रों पर हो रही शासकीय अव्यवस्था की शिकायत उनसे की। पूज्य गुरुदेव ने उन्हें उत्तर दिया कि मात्र उन्हीं कार्यकर्त्ताओं को प्रशासकीय व्यवस्था दी जाए, जो स्वयं को ईश्वरीय योजना का अंग मानें। साधक स्तर के व्यक्ति ही युग निर्माण के कार्य को आगे बढ़ाएँ। इसी उद्देश्य को लेकर पूज्य गुरुदेव ने नए शिविरों का क्रम प्रारंभ किया और वर्ष १९६३ के चैत्र नवरात्र का साधक शिविर आयोजित किया गया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

व्यास पूजा का भाव बोध

संवत् दो हजार बीस की गुरुपूर्णिमा। प्रचलित कैलेंडर के अनुसार ६ जुलाई, १९६३ का दिन। उस दिन गायत्री जयंती के पाँच सप्ताह पूरे हुए थे और गायत्री परिवार के उपासक अपनी ओर से कुछ संकल्प लेकर मथुरा के लिए रवाना होने लगे थे। आचार्यश्री ने पत्रों और पत्रिकाओं के माध्यम से कह दिया था कि जो आसानी से आ सकें, वही आएँ। बाकी अपने घर-गाँव में रहकर ही गुरुपूर्णिमा मनाएँ। पिछले दो महीनों में आचार्यश्री ने एक सौ आठ कार्यक्रम निर्धारित किए थे। इन कार्यक्रमों में जो जितने चला सकें, उतने चलाने का अनुरोध था। गुरुपूर्णिमा का दिन इन कार्यक्रमों के संकल्प का दिन नियत किया गया था। तपोभूमि आ रहे कार्यकर्त्ताओं का उद्देश्य अपने गुरु को प्रणाम करना और संकल्प लेना था। जो लोग क्षेत्रों में रह गए उन्हें भी व्यास पूजा करने और संकल्प के साथ श्रद्धासुमन चढ़ाने के लिए कहा गया।

परामर्श और मार्गदर्शन का यह क्रम पिछले पाँच सप्ताह में अच्छी तरह संपन्न हो गया था। तपोभूमि में साधकों के लिए पर्याप्त व्यवस्थाएँ की गई थीं। आचार्यश्री ने चतुर्दशी की शाम को आ रहे साधकों को ठहराने और पर्व मनाने के लिए की गई व्यवस्थाएँ देखीं और अखण्ड ज्योति संस्थान आ गए। वहाँ रामकृष्ण मिशन के एक संन्यासी स्वामी अनुभवानंद उनकी प्रतीक्षा करते हुए बैठे थे। कुशल-क्षेम के बाद उन्होंने बताया कि उन्हें स्वामी विवेकानंद की प्रेरणा हुई है। एक स्वप्न-दृश्य में वे आदेश देते हुए दिखाई दिए हैं कि गायत्री का प्रचार करो।

संन्यासी ने आचार्यश्री के सामने अपने आप को समर्पित करते हुए कहा कि जैसा वे कहेंगे उसी तरह आगे काम करेंगे। आचार्यश्री ने उन्हें अगले दिन इस बारे में कुछ तय करने की बात कहते हुए रात्रि विश्राम के लिए कह दिया। इस भेंट के बाद वे अपने शयनकक्ष में चले गए थे। सोने से पहले उन्हें रह-रहकर स्वामी रामकृष्ण परमहंस का स्मरण आ रहा था। उनके लीला संवरण से पहले की घटना थी। जो बारह शिष्य घर-बार छोड़कर काशीपुर आकर रहने लगे थे, उन्हें बुलाया।

परमहंस देव तब उद्यान भवन में थे। शिष्यों को वहाँ इकट्ठा कर उन्होंने कहा कि मैं तुम्हें संन्यास दीक्षा दूँगा। दीक्षा लेने वालों में नरेंद्रनाथ भी थे। अपने तरुण शिष्यों को गेरुआ पहनाकर परमहंस ने कहा—"क्या तुम लोग अभिमान को पूरी तरह त्यागकर अपने कंधों पर झोली टाँग सकते हो? नगर में जाकर भिक्षा माँग सकते हो?"

बारहों शिष्य उसी समय भिक्षा माँगने के लिए निकल पड़े। इन युवकों ने जिन गलियों और सड़कों पर घूमते हुए अपने सुनहले भविष्य के सपने सँजोए हुए थे, उन्हीं गलियों में भिक्षा माँगते हुए उन्हें लज्जा नहीं आई थी। लेकिन जिन स्वजनों और परिजनों ने उन्हें भिक्षाटन करते हुए देखा, उनकी आँखें जरूर भर आईं। युवा संन्यासियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा था।

भिक्षा में जो अन्न मिला, युवा संन्यासियों ने उसे पकाकर परमहंस के सामने रखा। परमहंस गले में कैंसर की पीड़ा के कारण कुछ भी खाने में असमर्थ थे, लेकिन उस दिन उन्होंने युवा संन्यासियों का पकाया भोजन ग्रहण किया। भोजन करते हुए परमहंस देव के आनंद की सीमा नहीं थी। उन्हें भोजन करता देख स्वामी विवेकानंद और अन्य युवा संन्यासी भी परम मुदित थे।

आचार्यश्री को परमहंस देव के जीवन की एक और घटना याद आई। स्मृति इतनी सघन थी, जैसे वह घटना उनका अपना ही अनुभव हो। स्वामी विवेकानंद अपने गुरु के बताए हुए विधान से साधना कर रहे थे। जप-तप और ध्यान के सिवा उन्हें कुछ सूझता ही नहीं था। पंचवटी में वे कभी-कभार पूरी-पूरी रात ध्यान में डूबे रहते। परमहंस ने एक दिन उन्हें अपने पास बुलाया और कहा कि दिन-रात साधना में लगा रहता है। देख, कठिन साधना से मुझे अष्ट सिद्धियाँ मिली थीं। उनके उपयोग का मुझे तो कभी अवसर नहीं मिला। उन्हें तू ले ले, भविष्य में बहुत काम आएँगी।

विवेकानंद ने गुरु की बात सुनी और पूछा—"महाराज! क्या इन सिद्धियों से मुझे ईश्वर की प्राप्ति में सहायता मिलेगी?" परमहंस देव ने उत्तर दिया—"नहीं।" इस पर स्वामी विवेकानंद ने तपाक से कहा—"तो फिर मुझे ये सिद्धियाँ नहीं चाहिए।" इस तरह के और भी कई प्रसंग आचार्यश्री को ध्यान में आते रहे। उन स्मृतियों या अनुभवों की यात्रा करते हुए ही आचार्यश्री योगनिद्रा में चले गए।

वह वर्ष स्वामी विवेकानंद का जन्म शताब्दी वर्ष था। कन्याकुमारी में जिस शिला पर बैठकर स्वामी विवेकानंद ने तब से सत्तर साल पहले ध्यान लगाया था—वहाँ स्मारक बनने की योजना इसी वर्ष शुरू हुई थी। इस योजना का आरंभ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक गुरु गोलवलकर ने किया था। इस काम का दायित्व एकनाथ रानाडे को सौंपा था।

समुद्र के खारे जल में नहाते रहने वाले पचपन फीट ऊँचे शिलाखंड पर ध्यानमग्न बैठे स्वामी विवेकानंद को बोध हुआ था कि उनके गुरु उन्हें भारतीय धर्म-संस्कृति का संदेश विदेशों में पहुँचाने के लिए कहते हुए प्रतीत हो रहे थे। उनका जीवनचरित कहता है कि रामकृष्ण परमहंस समुद्र की लहरों पर चलते हुए पश्चिम में जाते दिखाई दिए थे। उसी से शिष्य ने आशय समझा कि गुरु उनके संदेश को दिग्दिगंत में गुंजाने के लिए कह रहे हैं। आचार्यश्री सुबह उठे। प्रात:काल की नियमित उपासना के बाद उन्होंने अपनी मार्गदर्शक सत्ता को प्रणाम किया। उस दिन वे करीब बीस मिनट तक अपने आराध्य के सामने चुपचाप बैठे रहे। जैसे किसी संदेश की प्रतीक्षा हो। लगभग बीस मिनट बाद उठे तो प्रतिदिन की तरह माताजी ने कक्ष में प्रवेश किया और दोनों ने अपने इष्ट आराध्य को एक साथ प्रणाम किया।

उपासनाकक्ष से बाहर आते हुए आचार्यश्री ने माताजी से चर्चा शुरू की। उन्होंने कहा कि दक्षिण में जहाँ अरब

दान को पुण्य उसी आधार पर कहा जा सकता है कि उसको प्रामाणिक माध्यमों से उच्चस्तरीय सत्प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया जाए।

—परमपूज्य गुरुदेव

सागर और बंगाल की खाड़ी का मिलन होता है, वहाँ आज की सुबह हजारों लोग इकट्ठे हो रहे होंगे। जानती हो किसलिए? वहाँ पूर्णिमा के दिन सूर्योदय और सूर्यास्त का दृश्य बहुत भव्य होता है। माताजी सुनकर आचार्यश्री की ओर निहारती रहीं। आचार्यश्री ने कहा—सविता देव के ध्यान के लिए वहाँ से ज्यादा आकर्षक प्राकृतिक दृश्य कहीं और नहीं होगा। समुद्रजल से ऊपर उठता हुआ सूर्यबिंब प्रात:काल के समय ऐसा लगता है, जैसे सविता देव स्नान कर निकल रहे हों। अगाध जलराशि से उठती हुई तरंगें, उनसे उठता-गिरता जल सूर्योदय समय ऐसा प्रतीत होता है, जैसे सविता देव नहाकर बाहर निकले हैं तो उनके शरीर से पानी की बूँदें गिर रही हैं।

यह चर्चा करते हुए आचार्यश्री और माताजी परामर्शकक्ष में आ गए थे। परामर्श—जहाँ वे निवास पर आए साधकों या अतिथियों से मिलते थे। माताजी ने आचार्यश्री से अभी तक जो सुना था, उस विवरण को वे

मथ रही थीं। पूछने का मन हो रहा था कि अचानक इस तरह के उल्लेख का क्या आशय है? अपनी स्मृति को कुरेदते हुए उन्हें कन्याकुमारी के संबंध में पढ़ी हुई पुराकथा याद आने लगी। उस कथा के अनुसार घोर तपस्या कर बाणासुर ने अजेय होने का वरदान पा लिया था। उस वरदान में एक शर्त जुड़ी हुई थी कि वह कुमारी कन्या पर विजय नहीं प्राप्त कर सकेगा। बाणासुर के उत्पातों का अंत करने के लिए इंद्र ने एक यज्ञ किया।

यज्ञाग्नि से एक कन्या का जन्म हुआ। यह कन्या पार्वती के अंश से उद्‌भूत हुई थी। कुछ बड़ी होते ही समुद्र के तट पर शिव को वर के रूप में पाने के लिए तप करने लगी। प्रसन्न होकर शिव ने पाणिग्रहण स्वीकार कर लिया। यदि विवाह हो जाता तो बाणासुर का वध नहीं हो पाता। यह सोचकर देवताओं ने देवर्षि नारद से मिलकर ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कीं कि उनका विवाह नहीं हो पाया। वह मुहूर्त टल जाने के बाद देवी फिर तपस्या में निरत हो गईं। बाणासुर ने देवी के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। फिर इसके लिए हठ किया। हठ करने पर देवी और बाणासुर में युद्ध हुआ और युद्ध में राक्षस मारा गया।

माताजी को यह पुराकथा याद आ रही थी। उसी समय आचार्यश्री स्वामी अनुभवानंद से कह रहे थे कि जिस चित्त में किसी और के लिए स्थान नहीं रह गया हो, उसी में परमात्मा का अवतरण होता है। चेतना के कुमारी होने का अर्थ है—उसमें किसी भी कामना का उदय नहीं होना। उदय हुआ भी हो तो उसका पराभूत हो जाना। एक बार यदि किसी चित्त में परमात्मा का उदय हो जाता है तो वहाँ फिर दूसरी कामनाएँ, वासनाएँ नहीं आतीं। आती भी हैं तो उस अग्नि में ध्वस्त हो जाती हैं। स्वामी अनुभवानंद से उन्होंने गुरुपूर्णिमा, ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के लीला प्रसंग, स्वामी विवेकानंद के चरित, महत्त्व और उनकी परंपरा के अलावा अगले दिनों आने वाली विभीषिकाओं का भी जिक्र किया। दो-तीन लोग और परामर्श में आए थे। इस बीच गायत्री तपोभूमि में उत्सव की तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं। परामर्श के दौरान माताजी एक बार उठकर भीतर गई थीं। शायद बच्चों को देखने के लिए।

तपोभूमि में यज्ञ पूर्णाहुति के बाद व्यास पूजा का कार्यक्रम हुआ। पर्व देवता के पूजन-उपचार के बाद आचार्यश्री ने अपने संक्षिप्त उद्‌बोधन में कहा कि आज का दिन युग निर्माण योजना के विधिवत् आरंभ होने का दिन है। पिछले दो वर्षों से हम लोग समाज सुधार, राष्ट्र निर्माण और परिवार निर्माण जैसे कार्यक्रमों की चर्चा करते रहे हैं। चर्चा-परामर्श का वह दौर पूरा हुआ, जिसमें हम यहीं तक सीमित रहते थे। अब चर्चा-परामर्श से आगे निकलकर उन कार्यक्रमों को कार्यरूप में बदलना चाहिए।

चंद्रदेव ने सूर्यदेव से पूछा—''सूर्यदेव! परमात्मा ने मनुष्य को सर्वगुणसंपन्न बनाया है। उसे अपनी अंतरात्मा का एक अंश भी माना है। बहुत से ऋषि-मुनि तो उसे परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ राजकुमार कहकर पुकारते हैं, फिर मनुष्य के इस मायाजाल में उलझने का क्या कारण है?''

सूर्यदेव ने उत्तर दिया—''चंद्रदेव! मनुष्य एक जन्म को ही संपूर्ण जीवन मान बैठता है और यथासंभव शौक-मौज करने को आतुर होता है और इसीलिए अपने जीवन को अंधकारमय बनाता है। यदि मनुष्य अपने जीवन का लक्ष्य 'खाओ-पीओ और मौज करो' के अतिरिक्त कुछ और रखे और अपना उद्‌देश्य ईश्वर के सच्चे सहायक और सहयोगी बनने में और उसकी सृष्टि को सुंदर, समुन्नत बनाने में माने, तो कोई कारण नहीं कि वह इस मायाजाल से अपने को मुक्त न कर सके।'' चंद्रदेव की शंका का समाधान हो गया।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी — ४

मनुष्य शरीर की वास्तविक संपदाएँ

(समापन किस्त)

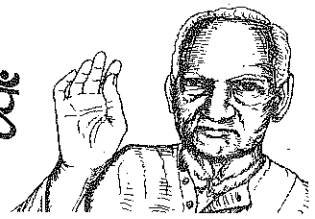

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव मनुष्य को ईश्वर का वरिष्ठ राजकुमार घोषित करते हुए कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में सारी समस्याएँ मात्र असंयम के कारण हैं। यदि मनुष्य अपने जीवन को संयमित कर सके तो यह संयमित जीवन ही आध्यात्मिक जीवन है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि चिंता, क्षोभ, भय और निराशा एक प्रकार की विकृतियाँ हैं, जो तब तक नहीं जातीं, जब तक मनुष्य अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित नहीं करता। विकृत चिंतन को बदलने और दूषित दृष्टिकोण को सुधारने का नाम ही अध्यात्म है। युगऋषि कहते हैं कि जीवन में सफलता मात्र उनके पास आती है, जो अपने जीवन के प्रति दृष्टिकोण को बदल पाने में सफल होते हैं। विचार करने की परिवर्तित शैली का नाम ही सुख है और हम सभी अपने दृष्टिकोण को बदलकर सुखी हो सकते हैं तथा मनुष्य जीवन की संपदाओं का लाभ उठा सकते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

काम से जी चुराने का नाम है दरिद्रता

मित्रो! दरिद्रता की समस्याएँ क्या हैं? दरिद्रता की कोई समस्या नहीं है। यह वास्तव में हमारे आलस्य और अपव्यय की समस्या है। वस्तुतः दरिद्रता इसी का नाम है। दरिद्रता और कुछ नहीं है। आप मशक्कत कीजिए। आपके लिए जितनी आवश्यकता है, आपके हाथ कमा कर रख सकते हैं। आप हाथ हिलाना नहीं चाहते और हराम की रोटी खाना चाहते हैं। मेहनत करना नहीं चाहते हैं। पंखे के नीचे बैठना चाहते हैं, हुकूमत चलाना चाहते हैं। घास छीलना नहीं चाहते, हथौड़ा चलाना नहीं चाहते। गरीबी है, क्या करें साहब! नौकरी नहीं मिलती। नौकरी कहाँ मिलेगी? नहीं साहब! कहीं नौकरी मिल जाए, किसी बड़े आदमी की नौकरी मिल जाए और अगर दुकान खोल लेगा तो क्या होगा? छोटे-छोटे आदमी दुकान खोले बैठे हैं। चाय-पकौड़े की दुकान वाले सुबह से शाम तक सौ रुपये तक की चाय-पकौड़ी बेच देते हैं और सौ-डेढ़ सौ रुपये कमा लेते हैं। नहीं साहब! नौकरी लगवाइए, ढाई सौ रुपये की नौकरी लगवाइए।

मित्रो! काम से जी चुराने का नाम है—दरिद्रता। दरिद्र माने मशक्कत से जी चुराना, श्रम के प्रति घृणा करना। श्रम के प्रति जो व्यक्ति घृणा करते हैं, उनको मैं दरिद्र कहूँगा। वे सब हरामखोर और कामचोर हैं। ये वास्तव में मानसिक दृष्टि से दरिद्र हैं। अगर मानसिक दृष्टि से दरिद्र नहीं हैं, तो वे चोर हैं, जो आपके लिए पैदावार करते हैं, दूसरों के लिए करते हैं। आप तो कोढ़ियों के तरीके से, कलंकियों के तरीके से, अपाहिजों के तरीके से और अपंगों के तरीके से बैठे रहते हैं और काम से घृणा करते हैं, काम से नफरत करते हैं। आप पसीना बहाना नहीं चाहते। जिस देश में पसीना बहाने के प्रति घृणा होगी और नफरत होगी, जिस देश के आदमी अपने आप को बड़ा आदमी इस ख्याल से मानेंगे कि अमीरी से और हरामखोरी से जिंदगी व्यतीत करना शान की बात है, उस देश को दरिद्रता आनी चाहिए। आपको नहीं आएगी, तो आपके पड़ोसी को आएगी।

मित्रो! आप हाथ-पाँव नहीं हिलाना चाहते। आपको पेंशन मिलती है। ठीक है आपको पेंशन मिलती है, तो सारी दुनिया को तो पेंशन नहीं मिलती। आप जाइए!

साग-भाजी उगाइए। साग-भाजी उगाएँगे तो वह औरों के काम आ सकती है। दुनिया के किसी दूसरे आदमी का भला हो सकता है। आप साग-भाजी बेचिए, मशक्कत तो कीजिए, जिससे दूसरों को अनाज मिल जाए, साग-सब्जी मिल जाए। नहीं साहब! हम कैसे काम कर सकते हैं। काम करना तो बड़ी खराब बात है। नहीं बेटे! काम से नफरत करना दरिद्रता की निशानी है। अपव्यय भी दरिद्रता की निशानी है। जितने भी आदमी दरिद्र हैं, जो यह कहते हैं कि हम कंगाल हैं, हम भूखे हैं और हम कर्जदार हैं, इसके पीछे दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह है—हरामखोरी। हम मेहनत करना नहीं चाहते, मेहनत से जी बचाना चाहते हैं। दूसरा कारण यह है कि हम अपनी हैसियत से ज्यादा खरच करते हैं। यह दोनों ही बुरी आदतें हैं। आपको अपनी एक-एक पाई और एक-एक पैसे को इस हिसाब से खरच करना चाहिए, जिससे अपनी औकात और अपनी हैसियत के हिसाब से आप काम चला सकें।

मित्रो! हम लोग तीस साल के करीब अखण्ड ज्योति के कार्यालय में किराये के मकान में रहे हैं। हमने दो सौ रुपये महीने में काम चलाया है। माताजी और हम, दो हमारे बच्चे और एक हमारी माँ—हम पाँच आदमी रहते थे। पाँच आदमियों के अलावा गेस्ट भी हमारे घर में आते रहते थे। दो सौ रुपये महीने में हमने इस तरीके से काम चलाया, जैसे कोई शानदार आदमी चला सकता है। हमने एक-एक पाई को इस तरीके से बचाकर रखा। चूल्हे का जो कोयला निकाला जाता था, माताजी उसे बुझाती जाती थीं, शाम को वही कोयला अँगीठी में उपयोग करके लकड़ी की बचत की जाती थी। मितव्ययता, पैसे की किफायतशारी जहाँ होगी, वहाँ कंगाली नहीं आ सकती। वहाँ दरिद्रता नहीं आ सकती। गरीबी वहाँ आएगी, जहाँ अंधाधुंध पैसा खरच करने की लोगों ने आदत डाल रखी है। उनको हमेशा यही शिकायत रहेगी कि हम पैसे की तंगी में हैं और गरीब हैं।

आध्यात्मिक असंयम का अभिशाप है—दरिद्रता

मित्रो! दरिद्रता अभिशाप है। किसका अभिशाप है? आध्यात्मिक असंयम का। धन के प्रति जो हमारा दृष्टिकोण है, अगर वह विकृत होता है, तो इसका शाप और पाप हमारे सामने आएगा। किस रूप में? गरीबी के रूप में और कंगाली के रूप में। अगर हमारे पास आध्यात्मिक दृष्टिकोण है, तो उसे हम अपने पैसे के संबंध में, आर्थिक क्षेत्र में एप्लाई कर सकते हैं। इसी आध्यात्मिकता को सिखाने के लिए मैं आपको यहाँ बुलाता हूँ। अगर आध्यात्मिकता आपके पास है और उसको आप पैसे के संयम में इस्तेमाल कर सकते हैं, जैसा कि मैंने आपको बताया था। आप इसे शरीरसंयम के बारे में इस्तेमाल कीजिए और अपने दिमाग में संतुलन

मानसून का समय आया तो साल भर से सूखी नदी उफान के साथ बहने लगी। गर्व से उन्मत्त होकर वह समीप बसे गाँव के कुएँ से बोली—"कुएँ भाई! जरा मेरी चौड़ाई तो देखो। मैं एक नहीं दसियों गाँवों को अपने अंदर समा सकती हूँ। तुम तो सहज ही मेरे अंदर समा जाओगे।" कुएँ ने नदी की बात का कोई प्रतिकार नहीं किया।

मौसम बदला तो बरसाती नदी सूखकर पतली-सी धारा में बदल गई। कुआँ उसे संबोधित करते हुए बोला—"बहन! जीवन में मात्र विस्तार ही सब कुछ नहीं होता। गुणवत्ता भी आवश्यक है। बिना उद्देश्य के बहुत बढ़ जाने से भी कोई लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाता। जीवन में सफलता तो व्यक्तित्व में गहराई लाने से ही प्राप्त होती है।"

के रूप में इस्तेमाल कीजिए। किसको? मंत्र को, फिर आप देखिए कि आपका दिमाग किस तरीके से कमल के फूल के तरीके से खिलता हुआ चला जाता है। फिर देखिए कि कितने भौंरे आते हैं, कितनी तितलियाँ आती हैं, कितनी शहद की मक्खियाँ आती हैं। आपका दिमाग इस तरीके से आपको इसी दुनिया में स्वर्ग जैसी अनुभूति लाता है। आप इसका इस्तेमाल कीजिए।

हमारी नीति एक हो—परिश्रम

मित्रो! अध्यात्म के सिद्धांतों को आप न केवल पैसे के बारे में, वरन परिश्रम के बारे में भी इस्तेमाल कीजिए। परिश्रम के बिना हम जिंदा नहीं रह सकते। परिश्रम हमारी नीति होनी चाहिए। हमारी माँ ने हमें परिश्रम करना सिखाया। हमारी माँ ९२ वर्ष की होकर मरी थीं। तब उनकी याददाश्त कुछ कमजोर हो गई थी, लेकिन उन्हें सारे दिन परिश्रम करते देखा गया। वे कभी झाड़ू लगाती थीं, कभी पुराने कपड़े, फटे हुए कपड़े की सिलाई करतीं, ताकि छोटे बच्चों के नीचे बिछाए जा सकें। जब कोई पूछता कि माता जी! यह कपड़े आप क्यों सी रही हैं? तो कहतीं कि किसी के यहाँ बच्चा होगा, तो उसके काम आ जाएगा। किसके बच्चा होने वाला है? भगवान जाने किसको दे दे। हमारी माँ की यही शिक्षा थी।

मित्रो! विनोबा की माँ ने अपने बच्चों को ब्रह्मज्ञानी बनाया था और हमारी माँ ने हमको परिश्रमशील बनाया। जिसको आप जादू कहते हैं, आचार्य जी का चमत्कार कहते हैं, वह है हमारी परिश्रमशीलता। आचार्य जी ने क्या चमत्कार किए? आचार्य जी ने अपनी जिंदगीभर में इतने काम कर डाले कि जितना कोई नहीं कर सकता। वह पाँच जिंदगी में भी नहीं कर सकता। हाँ बेटे! जिंदगी में मैं इतना काम नहीं कर सकता था, जितना मैंने कर दिया है। स्वास्थ्य की दृष्टि से, संगठन की दृष्टि से, साधना की दृष्टि से मैंने यह कैसे कर लिया? मित्रो! काम से, श्रम से मुझे इतना ज्यादा प्यार है, काम करते समय मुझे इतनी खुशी होती है, काम करने से मेरा इतना ज्यादा उत्साह बढ़ता है कि मैं आपसे क्या कह सकता हूँ? जब कभी काम करने का वक्त खाली निकल जाता है, तो मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि जाने चोरी कर रहा हूँ, जाने पाप कर रहा हूँ। जाने नहाया नहीं हूँ, जाने भूखा हूँ, काम न मिलता हो तब। बीमारी की हालत से लेकर के हर हालत में मैं काम करता हूँ।

परिश्रमशीलता है व्यावहारिक अध्यात्म

मित्रो! परिश्रमशीलता आदमी को दरिद्रता से बचाती है। आपकी भी दरिद्रता दूर हो सकती है, बशर्ते आप खरच करते समय पैसे-पैसे पर ध्यान रखें। एक भी पाई अनावश्यक खरच नहीं होनी चाहिए। तब आपके पास दरिद्रता नहीं आ सकती। आलस्य आपको दरिद्रता लाएगा। यही व्यावहारिक अध्यात्म है। नहीं साहब! अध्यात्म तो ध्यान लगाने में होता है। कुंडलिनी जगाने में होता है, चक्रभेदन में होता है। हाँ बेटे! वह भी होता है, लेकिन व्यावहारिक जीवन में। जो अध्यात्म हमको इसी जीवन में संपन्नता के रूप में, मानसिक संतुलन के रूप में, शारीरिक स्वास्थ्य के रूप में और हमारे परिवार और कुटुंब की स्वर्गीय परिस्थितियों के रूप में बना देता है, वही वास्तविक है। स्वर्ग के बारे में मैंने तलाश किया कि आखिर किसके लिए बनाया गया है? स्वर्ग में कौन जा सकता है? तलाश करते-करते बहुत से प्रमाणों को ढूँढ़-ढाँढ़ करके यह निष्कर्ष निकाला कि अगर स्वर्ग कहीं जीवन में होगा, तो वह मनुष्य के छोटे से कुटुंब में हो सकता है। चिड़िया अपने घोंसले में शांति के साथ गुजारा कर सकती है। हम भी अपने कुटुंब में, अपनी छोटी-सी प्रयोगशाला में ऐसा वातावरण पैदा कर सकते हैं। इसमें हमको १० घंटे, १२ घंटे, १४ घंटे रहना पड़ता है, शेष समय घर से बाहर रहते हैं। इसका वातावरण ऐसा बनाएँ, जिसमें स्वर्ग की अनुभूतियाँ होती हुई चली जाएँ।

इन दिनों स्रष्टा की अदम्य और प्रचंड अभिलाषा एक ही है कि सड़ी दुनिया को बदलने में, उसके लिए कायाकल्प जैसा नया सुयोग बनाया जाए। यही है—इक्कीसवीं सदी बनाम उज्ज्वल भविष्य। यही है—मनुष्य में देवत्व का उदय और प्रतिभा परिष्कार का महाअभियान। इसी को लोग विचार क्रांति की लाल मशाल का प्रज्वलन भी कहते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

मित्रो! यह कैसे हो सकता है? यह एक ही तरीके से हो सकता है कि आपके पास अध्यात्म हो। अध्यात्म का अर्थ क्या है? अध्यात्म का अर्थ है कि आपके कुटुंब के जो आदमी हैं, उनमें से प्रत्येक को अच्छे गुणों की

शिक्षा देना शुरू करें। घर का वातावरण आध्यात्मिकता के सिद्धांतों के अनुरूप बनाना शुरू करें। लोगों का कहना मानने की अपेक्षा सिद्धांतों का कहना मानने की जरूरत है। घर हमारी छोटी-सी प्रयोगशाला है। इसका वातावरण इस तरह बनाना चाहिए कि स्वर्ग की-सी परिस्थितियाँ हमारे पैरों के नीचे आकर खड़ी हो जाएँ। हमको अपने घर में हर आदमी को परिश्रमशील बनाना चाहिए। हमको स्वयं परिश्रमी बनना चाहिए और बच्चों को कहना चाहिए कि चलो बच्चो! हम तुमको एक संपत्ति देकर जाएँगे और वह है—परिश्रमशीलता की संपत्ति। आप स्वयं काम में लगिए और बच्चों को भी लगाइए। बच्चों में सहनशीलता की आदत पैदा कीजिए। सफाई की आदत पैदा कीजिए। सबको साथ लेकर के चलिए।

स्वर्गीय बनाएँ घर का वातावरण

मित्रो! आप घर का वातावरण ऐसा बनाइए, जिसमें सफाई का वातावरण, मितव्ययता का वातावरण, शिष्टाचार का वातावरण, शालीनता का वातावरण भी सम्मिलित है। आप अपने बच्चों को मीठा बोलना सिखाइए। उनको सिखाइए कि मीठा कैसे बोला जाता है। आप तो स्वयं गाली देते हैं और बच्चों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे आपसे सम्मानपूर्वक बोलेंगे। पहले आप शुरू कीजिए। अपने बच्चों के साथ अच्छे गुणों का प्रयोग कीजिए, फिर देखिए कि उसकी प्रतिक्रिया होती है कि नहीं होती।

मित्रो! आपका घर स्वर्ग बनता हुआ चला जाएगा। आप सहकारिता की, मितव्ययता की, सहानुभूति की परंपराएँ प्रारंभ कीजिए। आपको मैं यह आध्यात्मिकता के सिद्धांत बता रहा हूँ। नहीं गुरुजी! अध्यात्म की बातें नहीं, वरन आप कुंडलिनी जागरण की बात बताइए। भाड़ में गई तेरी कुंडलिनी और ऊपर से गया तू। बेकार की बात करता है, पागल कहीं का। कुंडलिनी को जाने क्या से क्या समझता है। जो असली अध्यात्म है, जो हमारे जीवन के हर कोने में, हर जर्रे में घुसना चाहिए और जिसका महत्त्व एवं प्रतिफल आज और अभी मिल सकता है, उसके बारे में लोग ख्याल ही नहीं करते। नवरात्र के इन शुभ दिनों में आपको वही अध्यात्म सिखाने के लिए बुलाता हूँ, जो आपके व्यावहारिक जीवन में समाविष्ट हो सके और आप सारी की सारी समस्याओं का समाधान करने में समर्थ हो सकें। आपकी आर्थिक समस्याओं, पारिवारिक समस्याओं, सामाजिक समस्याओं—सभी का हल व्यावहारिक अध्यात्म में है।

मित्रो! हमको अपने व्यावहारिक जीवन में, घरेलू जीवन में, पारिवारिक जीवन में अध्यात्म का प्रयोग करना पड़ेगा। आपको अपने आचरण में देवत्व का विकास करना पड़ेगा, ठप्पा बनना पड़ेगा। फिर देखिए आपके स्वभाव और संस्कार आपके बीबी, बच्चों के ऊपर चलते हैं कि नहीं। सबके ऊपर चलेंगे। हर आदमी ढलता हुआ चला जाएगा। लेकिन अगर आप स्वयं में भ्रष्ट जीवन जी रहे हैं और ऐसा नमूना पेश कर रहे हैं और बच्चों से ऐसी अपेक्षा करते हैं कि बच्चे हमारे बड़े खराब हैं, कहना नहीं मानते, अवज्ञाकारी हो गए हैं। और आप स्वयं में कैसे हैं, जरा शीशे में मुँह देख करके आइए कि हमने कैसे आचरण किया है। भ्रष्ट आचरण, संग्रही आचरण, कंजूस आचरण, विलासी आचरण, इसकी सारी

शिष्य ने गुरु से पूछा—"गुरुवर! नदियों का पानी तो मीठा होता है, फिर उन्हीं नदियों के पानी के संग्रहण से जो समुद्र बनता है, उसका जल खारा क्यों होता है?"

गुरु ने उत्तर दिया—"वत्स! नदी का स्वभाव देना है और समुद्र का लेना। उदारता, दान और सेवा की अपनी मिठास है और वही नदियों को मीठा बनाती है। समुद्र लेता है और संग्रह मात्र करता है और इसी कृपणता के कारण उसका पानी खारा बना रहता है और किसी के पीने योग्य नहीं रहता।" शिष्य को पता चल गया कि दानवीर का जीवन जीने से ही जीवन में मधुरता बनी रहती है और कृपणता मनुष्य को कटु बना देती है।

की सारी प्रतिक्रिया बच्चों के आचरण के रूप में हमारे सामने खड़ी है। हमें अपने व्यावहारिक जीवन में, पारिवारिक जीवन में अध्यात्म का प्रयोग करना पड़ेगा। तब जो हमारी पारिवारिक समस्याएँ हैं, उनका निदान होना संभव है।

विकृत दृष्टिकोण ही है एकमात्र समस्या

मित्रो! आज कितनी सामाजिक समस्याएँ हैं? कोई सामाजिक समस्या नहीं है। एक ही सामाजिक समस्या है, जिसके कारण हमारे समाज में अत्यंत विग्रह उत्पन्न हो रहे हैं और वह केवल एक है हमारे दृष्टिकोण की विकृति। दृष्टिकोण की विकृति के कारण आज हमारी सारी शक्ति समाज में एकदूसरे को मारने-काटने के लिए, एक आदमी का दूसरे का खून पीने के लिए, एक आदमी का दूसरे आदमी पर अविश्वास करने में खरच हो रही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य की तीन-चौथाई शक्ति दूसरों को हानि पहुँचाने में और अपनी सुरक्षा करने में खरच हो जाती है। केवल पच्चीस प्रतिशत शक्तियाँ हैं, जिनको हम विकास के काम में ला पाते हैं। सुखों को बढ़ाने में खरच कर सकते हैं। गवर्नमेंट से लेकर संस्थाओं एवं व्यक्तियों की, सबकी पचहत्तर प्रतिशत शक्तियाँ अपनी सुरक्षा करने और दूसरों को हानि पहुँचाने में लगी हुई हैं।

मित्रो! अगर हमारे पास आध्यात्मिक दृष्टिकोण रहा होता, तो हम अपनी सारी की सारी शक्तियों का उपयोग सृजनात्मक दिशा में कर रहे होते। फिर मित्रो! समाज की समस्याओं में से एक भी समस्या हमको दिखाई नहीं पड़ती। हजार वर्ष बाद भी जब कभी आपको समाधान करना हो, तो उसका एक ही आधार मिलेगा और उसका नाम होगा—अध्यात्म। अध्यात्म के बिना व्यक्ति की समस्याएँ, परिवार की समस्याएँ, राष्ट्र की समस्याएँ, अंतरराष्ट्रीय समस्याएँ, राजनीतिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ आदि में से एक का भी समाधान नहीं हो सकता। सामाजिक समस्याएँ, जिनने हमको गरीब बना करके रखा है। हमारी जमीन अमेरिका वालों की जमीन के तरीके से समृद्ध है, लेकिन हमारी आर्थिक समस्याएँ बाँध बनाने, नहरें बनाने से हल नहीं हो सकतीं। अमीर बनने से हल नहीं हो सकतीं। हमारी समस्याएँ जब कभी हल होंगी, तो हमारे चरित्र की ऊँचाई के आधार पर हल होंगी। हम कम पैसे में भी गुजारा कर सकते हैं और ईमानदारी से रह सकते हैं। सामाजिक समस्याएँ हमारी मानसिक विकृतियों का परिणाम हैं।

मित्रो! अंतरराष्ट्रीय समस्याओं का क्या किस्सा है? अरे साहब! बड़ी तंगी होने वाली है और लड़ाई होने वाली है। कैसी लड़ाई होने वाली है? इसलिए होने वाली है कि वह देश हमारा दुश्मन है और अमुक देश हमारा दुश्मन है। मित्रो! जब कभी भी अंतरराष्ट्रीय समस्याओं के समाधान होंगे, युद्धों का जब कभी भी अंत होगा, लड़ाई का जब कभी भी अंत होगा, एटम बम और दूसरी मशीनगनों को जब कभी समुद्र में फेंका जाएगा, वह दिन ऐसा होगा, जिसमें आध्यात्मिकता की विजय होगी। आध्यात्मिकता की जीत के बिना युद्ध को खतम करने का कोई तरीका नहीं। पहला महायुद्ध हुआ, दूसरा महायुद्ध हुआ अब तीसरे महायुद्ध की तैयारी है। चौथा महायुद्ध जब होगा, तो बर्ट्रेंड रसल के मुताबिक—तब तक इनसान इस लायक हो जाएगा कि ईंट और पत्थरों से लड़ाई होगी। तब दुनिया में कोई हथियार नहीं रहेगा। तीसरी लड़ाई में तो एटम बमों का—ऐटमी हथियारों का इस्तेमाल होगा। चौथे महायुद्ध में न तो ऐटमी हथियार होंगे और न ही उन्हें चलाने लायक आदमी रहेंगे।

मूर्खस्य पञ्चचिह्नानि
गर्वो दुर्वचनं तथा।
हठी चैव विषादी च
परोक्तं नैव मन्यते॥

शास्त्र कहते हैं कि मूर्ख व्यक्ति के पाँच लक्षण होते हैं—बिना बात के गर्व करना, अन्यथा दुर्वचन बोलना, व्यर्थ का हठ करना, सबसे कलह करना और दिए गए निर्देशों का पालन न करना। ऐसे लक्षणों वाले मनुष्य मूर्ख कहे जाते हैं।

समस्त समस्याओं का एक समाधान—अध्यात्म

मित्रो! लड़ाइयाँ खतम हो सकती हैं। कैसे हो सकती हैं? आध्यात्मिकता के सिद्धांतों को अपनाकर हो सकती हैं, जिसे हम आपको सिखाते हैं। इसलिए हम इतना जोर लगाते हैं, आपको कष्ट देते हैं, अनुष्ठान कराते हैं। जब कभी यह अध्यात्म लोगों के पास आएगा, तो अंतरराष्ट्रीय समस्याओं का समाधान हो सकेगा। फिर आदमी यह विचार करेगा कि इस जमीन में से हम सभी पैदा हुए हैं, अत: हम सब भाई बराबर हैं। जहाँ फालतू चीजें बची हुई हैं, वहाँ की चीजें दूसरों को क्यों नहीं मिलनी चाहिए? अमेरिका में इतनी जमीन खाली पड़ी है, अफ्रीका में इतनी जमीन खाली पड़ी है और इंडिया वाले, चाइना वाले मरे जा रहे हैं, तो जमीन को क्यों न फैला दिया जाए, जिससे उतनी जमीन हरेक के हिस्से में आ सकती है। हम सब भाई-भाई हैं। इन दीवारों को हटा देने पर सभी को विश्व का एक आँगन मिलेगा। उस दिन हम शांति से रहेंगे। उस दिन आर्थिक समस्याओं का हल हो जाएगा। जिस दिन हम इसे समझेंगे और भिन्नता की अपेक्षा एकता का पोषण करेंगे, उस दिन सारा विश्व एक हो जाएगा। सारे विश्व की भाषा एक होगी। तब फिर यह समस्या नहीं उत्पन्न होगी कि आप कहाँ के रहने वाले हैं।

मित्रो! जब कभी भी दुनिया में विचारों की एकता होगी और मनुष्यों में आपस में उनका आदान-प्रदान होगा, तो वह दिन होगा, जिसमें आध्यात्मिकता के मूलभूत सिद्धांत सन्निहित होंगे। जिन्हें हम एकता कहते हैं, जिन्हें हम प्यार कहते हैं, जिन्हें हम एक बिंदु पर इकट्ठा करने का प्रयत्न करते हैं। अगर जब कभी यह वृत्ति मनुष्य में आएगी, तो सारी दुनिया की भाषा एक होगी। सारी दुनिया एक राष्ट्र होगी। इससे कम में, इससे पहले समाधान नहीं हो सकता। दुनिया की हुकूमत तभी एक हो सकती है, जब आध्यात्मिकता के सिद्धांतों को मनुष्य अपनाएगा। जब कभी ऐसा होगा, तो इसी धरती पर स्वर्ग पसरा हुआ मिलेगा और मनुष्य में देवत्व के दर्शन होंगे।

॥ आज की बात समाप्त ॥

ॐ शांति।

एक व्यक्ति के मरने का समय आया तो देवदूत उसे लेने पहुँचे। व्यक्ति ने जीवन में पुण्य भी किए थे और पाप भी। इसलिए देवदूत उसे एक पुस्तक हाथ में देते हुए बोले—"तुम्हारे पुण्यकर्मों के बदले यह पुस्तक तुम्हें देते हैं। यह नियति की पुस्तक है, इसमें सारे प्राणियों का भाग्य लिखा है, तुम चाहो तो इसमें कोई भी एक परिवर्तन अपने पुण्यकर्मों के बदले में कर सकते हो।"

उस व्यक्ति ने पुस्तक के पन्ने पलटने प्रारंभ किए तो उसमें अपना पन्ना देखने से पूर्व वह दूसरों के भाग्य के पन्ने पढ़ने लगा। जब उसने अपने पड़ोसियों के भाग्य के पन्ने देखे तो उनका भाग्य देखकर उसका मन विद्वेष से भर उठा। वह मन ही मन बोला—मैं कभी इन लोगों को इतना सुखी नहीं होने दूँगा और क्रोध में भरकर वह उनके पन्नों में फेर-बदल करने लगा। देवदूतों के द्वारा दिए गए निर्देश के अनुसार, परिवर्तन एक ही बार किया जा सकता था। अत: जैसे ही उसने एक बदलाव किया, देवदूत ने वह पुस्तक उसके हाथ से ले ली। अब वह व्यक्ति बहुत पछताया; क्योंकि यदि वह चाहता तो अपनी नियति में सुधार कर सकता था, पर ईर्ष्या के वशीभूत होकर वह दूसरों की नियति बिगाड़ने में लग गया और यह अवसर गँवा बैठा। मनुष्य ऐसे ही जीवन में आए बहुमूल्य अवसरों को व्यर्थ गँवा देता है।

देव संस्कृति का हुआ अंतरराष्ट्रीय विस्तार

कालचक्र के बढ़ते हुए हर कदम पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय की विकासयात्रा नई उपलब्धि, नए आयामों का सृजन करने वाली साबित हुई है। यहाँ की मूल्य आधारित शिक्षण-प्रक्रिया, अनूठी कार्यशैली एवं महान आदर्शों के अनुरूप जीवनशैली ने भारत ही नहीं, अपितु विश्व के अनेक शिक्षा संस्थानों, विश्वविद्यालयों में तीव्र आकर्षण उत्पन्न किया है। आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों की जीवन प्रतिमाओं-प्रतिभाओं से सजा-सँवरा यह परिसर द्रुत गति से वैश्विक क्षितिज पर अपनी अलग विशिष्ट पहचान बनाने में सफल रहा है।

इस परिसर में संपन्न होने वाली अनेक अंतरराष्ट्रीय गतिविधियाँ, प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा विश्व के सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालयों-संस्थानों के साथ होने वाले अनुबंध इस विश्वविद्यालय के विस्तृत होते विश्वव्यापी फलक का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इसके वैश्विक विस्तार के बढ़ते चरण में इस सत्र में दो महत्त्वपूर्ण आयाम और जुड़ गए हैं। विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति के प्रतिनिधित्व में अमेरिका के दो प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय के साथ अनुबंधों पर हस्ताक्षर हुए हैं। इनमें पहला विश्वविद्यालय है—हिंदू यूनिवर्सिटी ओरलेंडो-फ्लोरिडा तथा दूसरा है—शिकागो की राइट ग्रेजुएट यूनिवर्सिटी। इन दोनों विश्वविद्यालयों के साथ शिक्षा, अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन, सेमिनार एवं प्रशिक्षण के क्षेत्र में समझौते हुए हैं। उल्लेखनीय है कि राइट ग्रेजुएट यूनिवर्सिटी के संस्थापक डॉ० बॉब राइट अपने प्रतिनिधि-मंडल के साथ शांतिकुंज व देव संस्कृति विश्वविद्यालय आ चुके हैं। उन्होंने कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या से भेंटवार्ता कर पूज्य गुरुदेव के विचारों, मिशन की योजनाओं एवं गतिविधियों को बारीकी से जानने का प्रयास किया तथा अत्यंत प्रभावित हुए।

विश्वविद्यालय की विश्व विस्तार गतिविधियों में एक ओर विश्व के उत्कृष्ट एवं सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के साथ एम० ओ० यू० पर हस्ताक्षर हो रहे हैं, वहीं दूसरी ओर विश्व के विभिन्न देशों के प्रशिक्षणार्थी इस परिसर में आकर यहाँ की विद्या से प्रशिक्षित होते रहे हैं। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि पिछले दो वर्षों से इटली के सेंट्रो स्टडी भक्ति-वेदांत के अध्यक्ष डॉ० फेरिनी के नेतृत्व में एक दल योग, अध्यात्म तथा वैकल्पिक चिकित्सा को जानने एवं सीखने के लिए इस परिसर में आता रहा है। इस क्रम में इस सत्र के अगस्त माह में भी २४ सदस्यीय दल ने विश्वविद्यालय में रहकर यहाँ की आध्यात्मिक जीवनचर्या में अभिन्न भागीदारी की तथा यज्ञ, ध्यान, योग, प्राणायाम व प्राकृतिक चिकित्सा आदि विषयों का अध्ययन प्राप्त किया है।

इटली से आए दल के नायक डॉ० बोनी ने बताया कि यह विश्वविद्यालय विश्व का एकमात्र ऐसा शिक्षा केंद्र है, जहाँ शिक्षा के साथ विद्या की विचारधारा है। उनकी मान्यता में आधुनिक शिक्षा के साथ वैदिक शिक्षा, सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा और वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की शिक्षा का समन्वय यहाँ की मौलिक विशेषता है। दल को संबोधित करते हुए प्रतिकुलपति ने कहा कि आज का दौर वह दौर है, जब सारे विश्व की नजर भारत की ओर है। इस विश्वविद्यालय के कुलपिता आचार्य जी के विचार आज समग्र विश्व में समाधान के रूप में देखे जा रहे हैं। यह विश्वविद्यालय उन्हीं के आदर्शों की नींव पर खड़ा है। यहाँ शिक्षा के साथ देव संस्कृति के गुणों पर आधारित मानव उत्कर्ष की विधा को विकसित किया जा रहा है।

परिसर में वैश्विक परिदृश्य की गतिविधियों के साथ ही इस सत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण आंतरिक गतिविधियाँ भी संपन्न हुई हैं। प्रतिकुलपति जी के निर्देशन में जीवन प्रबंधन विषय के अंतर्गत आपदा प्रबंधन, पर्यावरण जागरूकता एवं भ्रष्टाचार उन्मूलन जैसे विषयों को अनिवार्य पाठ्यक्रम के रूप में परिसर के सभी विद्यार्थियों को पढ़ाने की शुरुआत की गई है। इसके साथ ही पूज्य गुरुदेव के प्रमुख विचारों, सिद्धांतों एवं व्यक्तित्व कुशलता व प्रबंधन के जीवन सूत्रों को सभी विषयों के विद्यार्थियों के लिए आधारभूत पाठ्यक्रम के रूप में शामिल किया गया है।

इस क्रम में ५ सितंबर को संपन्न होने वाला शिक्षक दिवस समारोह भी अत्यंत विशेष रहा है। परिसर के सभी आचार्यों एवं विद्यार्थियों के लिए यह दिवस हर वर्ष एक नया संदेश, एक नई प्रेरणा लेकर आता है। इस दिन सभी परिसरवासी अपने श्रद्धेय कुलाधिपति से नई प्रेरणा, नव ऊर्जा और नूतन संकल्प को ग्रहण करने के लिए आतुर रहते हैं। समारोह के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में श्रद्धेय कुलाधिपति ने कहा कि सच्चे शिक्षक का गुण है कि वह मनुष्य को मनुष्य होने की पहचान करा दे। आज शिक्षक अपनी वास्तविक भूमिका से विमुख हो गया है, इसलिए शिक्षा से जीवन-विद्या विलुप्त हो गई है। आज का विद्यार्थी अपनी आंतरिक प्रतिभा और सामर्थ्य को पहचानने में असमर्थ दिखाई पड़ता है। सच्ची शिक्षा-सच्चा गुरु जीवन को समझना और जीना सिखाते हैं। इस समारोह में विशेष अतिथि के रूप में पधारे जिलाधिकारी, हरिद्वार डी० सेंथिल पांडियन ने कहा कि एक शिक्षक की असली पूँजी विद्यार्थी हैं। शिक्षक कभी अपने लिए नहीं कमाता, उसका जीवन समाज के लिए होता है।

परिसर की विशिष्ट गतिविधियों के अगले क्रम में ८ सितंबर को विश्वविद्यालय के दूरस्थ शिक्षा केंद्र के विद्यार्थियों का ज्ञानदीक्षा समारोह संपन्न हुआ। इस कार्यक्रम में उत्तराखंड के विभिन्न क्षेत्रों से आए २०० से अधिक विद्यार्थियों ने भाग लिया। कुलपति श्री शरद पारधी जी ने इस आयोजन का शुभारंभ किया एवं अपने उद्‌बोधन में कहा कि दूरस्थ शिक्षा कामकाजी लोगों के लिए सुनहला अवसर प्रदान करती है। इस विश्वविद्यालय की दूरस्थ शिक्षा पाने वालों के लिए सबसे खास बात यह है कि उन्हें डिग्री के साथ-साथ जीवन-विद्या भी सीखने को मिलती है। इस अवसर पर दूरस्थ शिक्षा के निदेशक श्री महेंद्र शर्मा ने सभी विद्यार्थियों को ज्ञानदीक्षा का महत्त्व समझाया तथा कहा कि हमारी ऋषि संस्कृति में ऋषियों ने ज्ञान के आदान-प्रदान की परंपरा चलाई है। इसी के अनुरूप यहाँ के शिक्षा पाठ्यक्रम में जीवनमूल्यों और आदर्शों का समावेश है। ज्ञानदीक्षा का कर्मकांड श्री जितेंद्र मिश्र ने संपन्न कराया तथा दूरस्थ शिक्षा के कुलसचिव ने सभी का धन्यवाद ज्ञापन किया।

परिसर के आंतरिक परिदृश्य में एक विशिष्ट कार्यक्रम परम वंदनीया माताजी के महाप्रयाण दिवस पर संपन्न कराया गया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय की कुलमाता एवं अखिल विश्व गायत्री परिवार की संरक्षिका मातृशक्ति माता भगवती देवी शर्मा के बीसवें महाप्रयाण दिवस पर विश्वविद्यालय परिसर में माताजी के जीवनवृत्त पर आधृत चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता का उद्‌देश्य अनूठे रूप में माताजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना था। विद्यार्थियों द्वारा बनाए गए चित्रों में वंदनीया माताजी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित किया गया। इन चित्रों में प्रकृतिस्वरूपा माताजी, सजल संवेदना, प्रेम और प्यार बाँटती माताजी, समस्याओं का समाधान करती माताजी आदि अनेक स्वरूपों को उभारा और प्रस्तुत किया गया। चित्र प्रदर्शनी के प्रतिभागियों को श्रद्धेय कुलाधिपति जी द्वारा गीता की कक्षा में सम्मानित किया गया।

इस तरह यह परिसर इस सत्र में बाह्य और आंतरिक गतिविधियों के विशिष्ट सोपानों से सुसज्जित होकर अपने अगले सत्र के नए अभियानों-योजनाओं की ओर उन्मुख हो रहा है। ❀

ऋषि प्रचेता कौशांबी राज्य के कुलगुरु थे। राज्य के राजा ने उनसे प्रश्न किया—"गुरुवर! वह कौन है, जो सब कुछ होते हुए भी दरिद्र के समान है?" ऋषि बोले—

"शक्तिमानप्यशक्तोऽसौ धनवानपि निर्धनः।
श्रुतवानपि मूर्खश्च यो धर्मविमुखो नरः॥

जो मनुष्य धर्म से विमुख होता है, धर्म का पालन नहीं करता है, वह शक्तिवान होते हुए भी निर्बल है, धनवान होते हुए भी निर्धन है और वेद-शास्त्रों को पढ़ने के बाद भी मूर्ख के समान है।"

अपनों से अपनी बात

अखण्ड ज्योति के पाठकों से भावभरा अनुरोध

अखण्ड ज्योति के पाठक करें आत्ममूल्यांकन

अखण्ड ज्योति के प्रत्येक पाठक को, अपने गायत्री परिवार के प्रत्येक परिजन को इन दिनों विशेष तौर पर इस वर्ष के इस अंतिम मास में अपनी विशिष्ट स्थिति का मूल्यांकन अवश्य करना चाहिए। यदि वे अपनी जीवन-चेतना की विशिष्टता का अनुभव करेंगे तो उन्हें इस सत्य का एहसास होगा कि इस धराधाम पर उनका आगमन निश्चित ही विशेष उद्देश्य को लेकर हुआ है। हमें आँधी में उड़ते-फिरते रहने वाले पत्तों की तरह निष्प्रयोजन, इधर-उधर उड़ते फिरना नहीं है, बल्कि समुद्र में खड़े हुए प्रकाशस्तंभों की तरह बनना है, जो घोर अंधकार में स्वयं चमकते रहते हैं और अपने प्रकाश से उधर से निकलने वाले जहाजों को डूबने से बचाते हैं। इस लक्ष्य को हमें अपने जीवनक्रम में-दृष्टिकोण में सम्मिलित करना चाहिए।

अपनी अखण्ड ज्योति पत्रिका इस कार्य में हममें से हरेक के लिए प्रेरक व पथ-प्रदर्शक है। इसमें परमपूज्य गुरुदेव का चिंतन व उनका मार्गदर्शन है, जो हमें यह बताता है कि जिस समय में हम पैदा हुए हैं, मानव इतिहास में उसका बड़ा महत्त्व व मूल्य है। इन दिनों मानवीय सभ्यता व संस्कृति जीवन-मरण के दोराहे पर खड़ी है। सामान्य जनों की क्या कहें, बुद्धिमान लोग भी बेतरह बुद्धि-भ्रम में उलझ गए हैं। स्वार्थपरता व अहंता का दृष्टिकोण अपनाकर हर मनुष्य आपा-धापी की निकृष्ट मन:स्थिति के दलदल में गले तक फँस गया है। अविचार और अनाचार का बोलबाला है। इस लोक-प्रवाह ने सामाजिक वातावरण को विषाक्त बना दिया है। स्नेह-सौजन्य के दर्शन बड़ी मुश्किल से होते हैं। सज्जनता व सहृदयता शब्दों में सिमट चुकी प्रतीत होती है।

अविश्वास और आशंका का साम्राज्य छाया हुआ है। आज का मित्र, कल का शत्रु न सिद्ध होगा, इसका कोई भरोसा नहीं। मनुष्य की क्षुद्रता जिस स्तर पर उतर आई है, उसे देखते हुए लगता है कि मानवीय सभ्यता व संस्कृति धीरे-धीरे धरती से उठती चली जा रही है। हाँ, यह ठीक है शिक्षा-चिकित्सा, व्यवसाय, विज्ञान आदि में भारी बढ़ोत्तरी देखने को मिलती है। सुख-साधन भी बढ़े हैं, किंतु दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों में बढ़ोत्तरी उससे भी तीव्र हुई है। इस दावानल में सबकी सुख-शांति नष्ट-भ्रष्ट होती चली जा रही है। बड़े छोटों को निगल जाने के लिए आतुर बैठे हैं। आतंक, अलगाव के साथ दुनिया छोटे-बड़े युद्धों से घिरी है। हर समय यही आशंका बनी रहती है कि कहीं कोई परमाणु हथियार इस सुंदर भूलोक को भस्मसात् कर देने का निमित्त न बन जाए और मानवीय सभ्यता का सदा-सर्वदा के लिए अंत न हो जाए।

विषम हैं ये परिस्थितियाँ

व्यक्ति और समाज किस तरह विपन्न परिस्थितियों में घिरते चले जा रहे हैं? यह देखकर अनेकों आशंकाएँ घेर लेती हैं। हम सचमुच चाहे-अनचाहे जीवन-मरण के दोराहे पर खड़े हो गए हैं। एक ओर सर्वनाश अट्टहास कर रहा है, दूसरी ओर मानवता सहमी खड़ी है। मरण ने अपना सरंजाम पूरे ठाठ-बाट से खड़ा कर लिया है। जीवन इस असमंजस में घिरा खड़ा है कि हमारा क्या होना है? हमारा अस्तित्व अगले दिन रहना है या उसके इतिश्री होने की घड़ी आ गई। जिस राह पर व्यक्ति और समाज ने चलने की ठान ली है, वह अत्यंत भयावह है। प्राकृतिक उपद्रव हों या जीवन की विसंगतियाँ, हर क्षेत्र की स्थिति उलझती जा रही है। गतिरोध ने आगे बढ़ने का रास्ता बंद कर दिया है। विवेक किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर हतप्रभ बना खड़ा है। सूझ नहीं पड़ता आगे क्या होना है, क्या किया जाना है?

समय की इस विषम वेला में परमपूज्य गुरुदेव के विचार, उनका मार्गदर्शन संजीवनी औषधि की तरह है। अखण्ड ज्योति पत्रिका में इसी का प्रकाश है। जागरूक आत्माओं का विशेष कर्त्तव्य है कि इस प्रकाश को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाएँ। अखण्ड ज्योति के प्रत्येक पाठक एवं अपने देव परिवार के प्रत्येक परिजन को इस आपत्तिकाल में विशेष भूमिका निभानी है। उन्हें सामान्य

नर-पामरों की तरह पेट-प्रजनन के लिए नहीं जीना है। अपनी प्रतिमा को उसी कीचड़ में नहीं सड़ाना है, जिसमें कि सर्वनाश के गर्त में गिरने वाली अंधी भेड़ें दौड़ती हुई चली जा रही हैं। हम सब तो भगवान महाकाल के सहयोगी व उनके अपने लीलासहचर हैं। हमें अपनी इस विशिष्ट स्थिति का अनुभव बार-बार करना चाहिए, जिससे ऊँचे उद्देश्यों का निर्वाह होता हो। युग की उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने के लिए हमें समाधान के रूप में पूज्य गुरुदेव के विचारों व उनके मार्गदर्शन को घर-घर पहुँचाना ही है। अखण्ड ज्योति के प्रकाश को अधिकाधिक प्रसारित करने, उसकी सदस्य संख्या बढ़ाने हेतु अपनी जागरूकता का परिचय दिए बिना अब काम चलेगा नहीं। प्रहरी सोते रहेंगे तो दस्युओं के आतंक वाली इस अंधकारभरी निशा में कुछ भी हो सकता है।

मुनाफा कमाना नहीं है, पत्रिका का उद्देश्य

अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रेरक विचारों व जीवन-साधना के तत्त्वदर्शन से अपने परिजन तो वर्षों से परिचित हैं, अब उन्हें इससे अन्यों को परिचित कराना है। उनका यह कार्य पूज्य गुरुदेव द्वारा दी जाने वाली अग्निदीक्षा की भाँति होगा, जो जन-मन के कषाय-कल्मष व कलुष को जलाकर भस्म कर देगा। **इस पावन दीक्षा की दक्षिणा बस, अखण्ड ज्योति पत्रिका का वार्षिक शुल्क है, जो इस वर्ष तक १२० रुपये प्रतिवर्ष था। कई विवशताओं के कारण इसे मामूली बढ़ोत्तरी करके १५० रुपये वार्षिक कर दिया गया है। अखण्ड ज्योति के कागज, पैकिंग व डाकव्यय को देखें तो बढ़ोत्तरी कुछ भी नहीं है।** अपने परिजन जानते हैं कि परमपूज्य गुरुदेव के समय से ही पत्रिका की नीति 'नो प्रोफिट-नो लॉस' की रही है। अभी भी उसी नीति को बरकरार रखा गया है। आगे भी इसे यथावत् रखा जाएगा। हाँ, लागत का खरच तो निकालना ही पड़ता है, ताकि पत्रिका प्रकाशित होती रहे। पिछले, कुछ वर्षों से इस खरचे में वृद्धि हो रही थी, जिसे यथाशक्ति, यथासंभव सहन किया गया। कोशिश यही रही कि शुल्क न बढ़ाया जाए, पर अब असहनीय होती जा रही स्थिति के कारण इस बोझ को अपने पाठकों व परिजनों में वितरण करना पड़ा।

अपने पाठक-परिजन इसे इच्छा-आकांक्षा नहीं, विवशता समझें। हाँ, १५० रुपये वार्षिक शुल्क होने पर भी ३६५ दिन के लिए स्वाध्याय हेतु मिलने वाली इस अमूल्य पाठ्य सामग्री का व्यय लगभग ४१ पैसे प्रति दिन आता है। पूज्य गुरुदेव के साथ प्रतिदिन सत्संग पाने के लिए यह ४१ पैसे प्रतिदिन का अंशदान तो दिया ही जा सकता है। हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति तो चौरासी लाख योनियों में करते रहे हैं। यह क्रम तो लाखों वर्षों से चला आ रहा है और आगे भी उसी कुचक्र में घूमते हुए लाखों वर्ष सहज ही बिताने को मिल सकते हैं। हम अखण्ड ज्योति के पाठक-परिजन यदि एक जन्म युग-संकट से जूझने में लगा दें और उसमें अपने व्यक्तिगत स्वार्थ-साधनों में थोड़ी कटौती कर दें, तो यह कोई बहुत बड़े घाटे की बात नहीं है। इन दिनों परमपूज्य गुरुदेव ने पीड़ित मानवता के परित्राण के लिए, अखण्ड ज्योति के प्रचार-प्रसार व विस्तार के लिए हममें से हरेक को पुकारा है। यदि हमारे पास श्रद्धा से भीगी आँखें हैं तो देख सकते हैं कि उन्होंने आँसूभरे नेत्रों से हमारी ओर निहारा है। उनकी बात मानने के लिए अपने ओछे प्रयोजनों से हटना पड़े तो संकोच नहीं करना चाहिए।

आज की माँग—जनमानस का भावनात्मक परिष्कार

जनमानस का भावनात्मक परिष्कार अपने समय की सबसे बड़ी माँग है। अखण्ड ज्योति का अवतार व अस्तित्व इसी के लिए है। विकृत चिंतन से निकृष्ट कर्म बनते हैं और निकृष्ट गतिविधियाँ ही अनेकानेक संकटों का सृजन करती हैं। इस तथ्य को भली प्रकार समझाने के लिए ही अखण्ड ज्योति को घर-घर पहुँचाना अपने परिजनों का दायित्व है। व्यक्ति व समाज की उलझी हुई अनगिनत समस्याओं का यही एक समाधान है। लोक-मानस में घुस पड़ी चिंतन-विकृतियों का समाधान इसी माध्यम से संभव है। इस एक ही शस्त्र को हाथ में लेकर हम असुरता की चतुरंगिणी सेना को निश्शस्त्र व निरस्त कर सकते हैं। अपनी गतिविधियों को, अपनी प्रतिभा को, अपने साधनों को जितना संभव हो, इसी महायज्ञ के लिए प्रस्तुत करना है।

अखण्ड ज्योति के पाठकों को, अपने प्रिय परिजनों को इस विषम वेला में विशेष रूप से युग-निमंत्रण मिला है। उन्हें अपना संपूर्ण समय, श्रम, ज्ञान, प्रभाव, धन मात्र लोभ और मोह के परिपोषण में नहीं लगाए रखना है, वरन उनमें से एक महत्त्वपूर्ण अंश काटकर युग-देवता के विचारों के प्रसार के लिए प्रस्तुत करना है। इस विषम वेला में यदि हमसे इतना भी न बन पड़ा तो इसे हम सबका ही नहीं, समूची मानव जाति का दुर्भाग्य माना जाएगा। महाकाल के अपने लीलासहचर ही यदि हथियार

डाल दें और सदुद्देश्यों के लिए साहसिक कदम उठाने के लिए तैयार न हों तो फिर पशु-प्रवृत्तियों में उलझे हुए सामान्य लोगों से क्या आशा की जाए? प्रकाश के आमंत्रण को हम इस आधार पर अस्वीकार कर दें कि इससे क्षुद्र स्वार्थपरता की पूर्ति में कमी पड़ जाएगी तो फिर यही कहना पड़ेगा कि परमपूज्य गुरुदेव के तप:पूत व्यक्तित्व व उनकी सिखावन को हम भूलने लगे हैं। अब उनका अनुकरण करने वालों की पीढ़ी समाप्त होने लगी है।

आज की सबसे बड़ी तपस्या है युग-साधना

अखण्ड ज्योति के प्रत्येक पाठक, अपने प्रत्येक परिजन को हजार बार अपनी स्थिति पर विचार करना चाहिए और वह साहस जुटाना चाहिए, जिसे अपनाने में ही उनके विशिष्ट जीवन की सार्थकता है। वर्तमान समय की सबसे बड़ी तपस्या युग-साधना है। अखण्ड ज्योति के प्रकाश का अधिकाधिक वितरण इसका सबसे बड़ा माध्यम है। इस आपत्तिकाल में इससे बढ़कर पूजा, भजन, जप, तप, व्रत, ज्ञान, ध्यान और दूसरा नहीं हो सकता कि आदर्शवादिता को जीवित रखने के लिए, युगावतार के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने के लिए हम अपनी सारी शक्तियों को झोंक दें। नास्तिकवादी अनास्था अपने प्रत्यक्ष व प्रच्छन्न कलेवरों में पूरे जोर-शोर से मैदान में डटी हुई है। उसकी आक्रामक व्यूहरचना यदि सफल हो गई तो समझना चाहिए कि इक्कीसवीं सदी में उज्ज्वल भविष्य लाने वाले सारे आधार ही नष्ट हो जाएँगे।

आपत्तिकाल के आपत्ति धर्म होते हैं। हमें आपत्ति धर्म के रूप में अपने जलते हुए जमाने पर पूज्य गुरुदेव के विचारों की संजीवनी के सिंचन के लिए आगे आना चाहिए। इसके लिए अपने छिटपुट प्रयोजनों को पीछे धकेलने में यदि भौतिक दृष्टि से कुछ घाटा दीखता तो उसके लिए साहस सँजोना चाहिए। बड़ी बात सोचने, बड़ा साहस बटोरने और बड़े कदम बढ़ाने के लिए यही सबसे अच्छा समय है। समय-समय पर महामानव अपनी बड़ी से बड़ी आहुतियाँ देते रहे हैं। उन्हीं के जीवन दीपकों ने अपने समय के अंधकार को दूर किया। इन सभी दीपकों के प्रकाश को सँजोकर उसमें प्राणों के तप को उँड़ेलकर पूज्य गुरुदेव ने हमारे लिए अखण्ड ज्योति प्रज्वलित की है। अब हमारी जिम्मेदारी बनती है कि इसके प्रकाश से भटकते हुए जमाने को रास्ता दिखाएँ। पूज्य गुरुदेव ने हमसे बार-बार यह कहा है कि छोटी-से-छोटी परिस्थिति के व्यक्ति की बड़ी-से-बड़ी मन:स्थिति हो सकती है और वह ऐसा कुछ कर सकता है, जिसे देखकर प्रचुर साधनसंपन्न व्यक्ति आश्चर्यचकित होकर रह जाए, पर यह तो बड़े साहस की बात हुई। **यहाँ तो बस ४१ पैसे प्रतिदिन के हिसाब से ३६५ दिनों के बस १५० रुपये की बात हो रही है। अखण्ड ज्योति का बढ़ा हुआ वार्षिक शुल्क इतना ही तो है।**

अखण्ड ज्योति के पाठकों के लिए अनिवार्य अनुबंध

इस छोटी-सी इकाई को हमें अपने एवं अपनों के जीवन में कुछ इस तरह बना लेना चाहिए, जिसके बारे में यह कहा जाए कि अपने आदर्शवाद की प्रतिष्ठापना में अग्रसर अखण्ड ज्योति के पाठक व अपने परिजनों के लिए यह अनिवार्य अनुबंध है। उन्हें इतना तो करना ही है। परमपूज्य गुरुदेव अखण्ड ज्योति के प्रसार-विस्तार के लिए बार-बार अनुरोध व आग्रह करते रहे हैं। यह सिलसिला आखिर कब तक? अब तो उनका यह कार्य उनके प्रत्येक बेटे व बेटी को करना पड़ेगा। पिता के कार्य को संतानें ही तो संपन्न करती हैं। ऐसे में भला हममें से कोई किस तरह से पीछे रह सकता है। **जाग्रत परिजनों को अपनी विशिष्ट स्थिति का मूल्यांकन करते हुए अखण्ड ज्योति के कम से कम दस नए सदस्य बनाने का न्यूनतम कदम तो उठाना ही चाहिए।** इस आग्रह को सर्वथा अस्वीकृत कर देना, उपेक्षा दिखाना सरल है, पर अंतत: आत्मकल्याण व लोक-कल्याण की दृष्टि से यह बहुत ही अविवेकपूर्ण निर्णय होगा। इस घाटे की पूर्ति सहज ही न हो सकेगी और इसके लिए चिरकाल तक पछताना पड़ेगा। इसलिए जहाँ तक संभव हो, इस न्यूनतम प्रयास के लिए साहस समेट ही लेना चाहिए।

कहना न होगा कि नवनिर्माण जैसे महान अभियान एकाकी प्रयत्नों से किसी भी प्रकार संभव नहीं हो सकते। हाँ, इनका प्रारंभ अवश्य अकेले किया जा सकता है। व्यापकता के लिए तो संघशक्ति अनिवार्य है। अपने परिजन भी अपनों के साथ मिलकर अखण्ड ज्योति के सदस्यता अभियान को तीव्र कर सकते हैं। एक से दस को संभव बनाते हुए हमें नववर्ष के वसंत पर्व पर परमपूज्य गुरुदेव को यह श्रद्धांजलि अवश्य अर्पित करनी चाहिए। यही वह न्यूनतम अनुदान है, जिसकी आशा परमपूज्य गुरुदेव स्वयं बहुत ही आशाभरे नेत्रों से कर रहे हैं। सच कहा जाए तो इन दिनों इससे बढ़कर गुरुभक्ति-ईश्वरभक्ति दूसरी कोई हो ही नहीं सकती।

गायत्री गंगा, गीता, गौ, सब सद्गति की खान हैं,
ये महान भारत की संस्कृति की सच्ची पहचान हैं।

गायत्री परमेश्वर की संकल्पशक्ति की धार है,
सकल सृष्टि में चेतनता का उससे हुआ उभार है,
जो भी श्रद्धा से जुड़ जाता है इस चेतन धार से,
सदा सुरक्षित रहता है वह युग के कठिन प्रहार से,

हो जाते साकार सहज ही उसके सब अनुमान हैं।
ये महान भारत की संस्कृति की सच्ची पहचान हैं।

गंगा केवल नीर नहीं है, यह ममता साकार है,
इसकी बूँद-बूँद में रहता जननी जैसा प्यार है,
ब्रह्मा, विष्णु, महेश सभी का गंगाजल में वास है,
जीवन, पोषण, अनुशासन का गंगा में उल्लास है,

सुख-समृद्धि पाते, जो देते गंगा को सम्मान हैं।
ये महान भारत की संस्कृति की सच्ची पहचान हैं।

उपनिषदों को कहा गया है उद्गम अनुसंधान का,
उनमें से प्रत्येक स्रोत है ज्ञान और विज्ञान का,
उनको गौ-सा दुहा कृष्ण ने, मंथन किया पुनीत है,
मंथन से निकली गीता ही वह अनुपम नवनीत है,

इसके सेवन से बन जाते साधक प्रज्ञावान हैं,
ये महान भारत की संस्कृति की सच्ची पहचान हैं।

गौ की हर प्रवृत्ति प्रेरक होती देवत्व-विकास की,
है प्रतीक परमार्थ और अपनेपन के आभास की,
धरती को उर्वरता देतीं, मानव को आरोग्य हैं,
यूँ सद्गुण-संवर्द्धन करतीं, बनते मनुज सुयोग्य हैं,

मानव का ही नहीं, प्रकृति का भी करती कल्याण हैं।
ये महान भारत की संस्कृति की सच्ची पहचान हैं।

—शचीन्द्र भटनागर